अंक : १३५

जुलाई - सितंबर २०१६

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

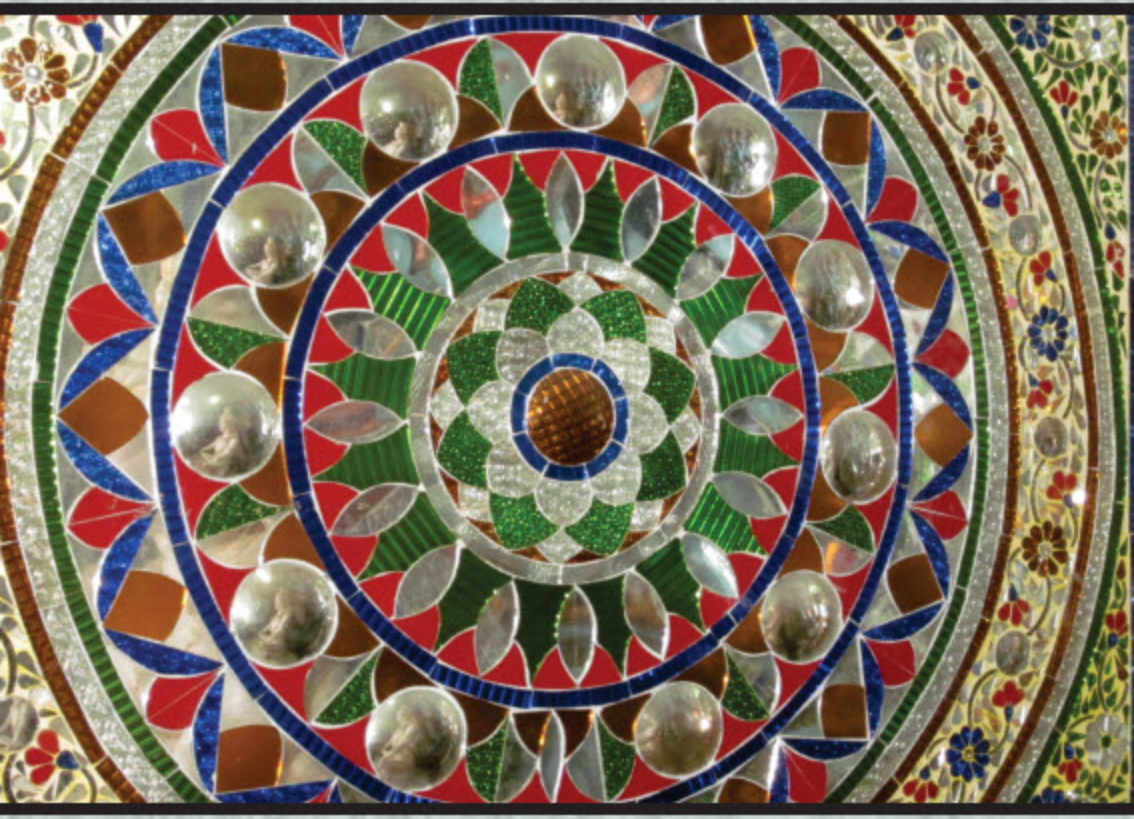

कहानियां

वीणा विज 'उदित' • सुशांत सुप्रिय • डॉ. निरुपमा राय

मधु अरोड़ा • गोविंद उपाध्याय

आमने-सामने
अशोक वशिष्ठ

सागर-सीपी
डॉ. क्षमा शर्मा

२० रुपये

जुलाई-सितंबर २०१६
(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"

संपादिका
मंजुश्री

संपादन सहयोग
डॉ. राजम पिल्लै
जय प्रकाश त्रिपाठी
अशोक वशिष्ठ
अश्विनी कुमार मिश्र

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

●सदस्यता शुल्क●
आजीवन : ७५० रु., **त्रैवार्षिक** : २०० रु.,
वार्षिक : ७५ रु.,
कृपया सदस्यता शुल्क
मनीऑर्डर, चैक द्वारा
केवल **"कथाबिंब"** के नाम ही भेजें.

●रचनाएं व शुल्क भेजने का पता●
ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई-४०० ०८८.
फोन : २५५१ ५५४१, ९८१९१६२६४८

e-mail : kathabimb@gmail.com
www.kathabimb.com

● **न्यूयॉर्क संपर्क** ●
नरेश मित्तल
(M) 845-304-2414
नमित सक्सेना
(M) 347-514-4222

● **शिकागो संपर्क** ●
तूलिका सक्सेना
(M) 224-875-0738

एक प्रति का मूल्य : २० रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु
२० रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.
(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)

कहानियां

।। ७ ।। सिलेटी बदलियां - वीणा विज "उदित"
।।१३।। धोबीपाट - सुशांत सुप्रिय
।।१९।। तुम्हारी अनुभूति - डॉ. निरुपमा राय
।।२५।। एक सुहानी शाम ... यूं ही बीती - मधु अरोड़ा
।।३३।। सलीब पर लटका आदमी - गोविंद उपाध्याय

लघुकथाएं

।।१२।। गौरेया / डॉ. योगेंद्र नाथ शुक्ल
।।१६।। खाली थाली / कमला वाधवानी "प्रेरणा"
।।२४।। टी. वी. के किसान / चित्तरंजन गोप
।।३२।। मां की पीड़ा / महेश शर्मा
।।३२।। नियमों में आदत / सत्य शुचि
।।४४।। चरण चिरौरी / सुरेश कुशवाहा "तन्मय"
।।४७।। आंखें / योगेंद्र शर्मा
।।५३।। और दरवाज़ा बंद हो गया / सुरेंद्र गुप्त

कविताएं / ग़ज़लें

।।१२।। मुक्तक / शिव डोयले
।।१८।। नवगीत / राघवेंद्र तिवारी
।।१८।। कविता / श्यामसुंदर निगम
।।२४।। दो ग़ज़लें / राजेंद्र "निशेश"
।।३१।। ग़ज़ल / रामकुमार पटेल "यार"

स्तंभ

।। २ ।। "कुछ कही, कुछ अनकही"
।। ४ ।। लेटर बॉक्स
।।३९।। "आमने-सामने" / अशोक वशिष्ठ
।।४५।। "सागर-सीपी" / डॉ. क्षमा शर्मा
।।४९।। "औरतनामा" / डॉ. राजम पिल्लै
।।५४।। पुस्तक-समीक्षा

●**"कथाबिंब" अब फेसबुक पर भी** ●
facebook.com/kathabimb
आवरण पर नामित रचनाकारों से निवेदन है कि
वे कृपया अपने नाम को "टैग" करें.

आवरण चित्र : पावन धाम मंदिर की एक झांकी, हरिद्वार.
चित्र : डॉ. अरविंद

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

कुछ कही, कुछ अनकही

"कथाबिंब" प्रकाशन का यह ३८वां वर्ष है. इस बीच छपाई की तकनीकी में आमूल-चूल परिवर्तन आये. सबसे बड़ा बदलाव कंप्यूटर द्वारा कंपोज़िंग में आया. इसे डीटीपी कहा जाता है. जितना काम पहले घंटों में होता था उतना अब मिनटों में होने लगा है. पेज़ का ले-ऑउट और डिज़ाइनिंग भी आसान हो गयी है. अनेक सॉफ्टवेयर उपलब्ध हैं. इंटरनेट के माध्यम से हर विषय से संबंधित चित्रादि को ढूंढ़ कर आप उपयोग कर सकते हैं. कुछ दिन पहले तक ट्रेसिंग पेपर पर प्रिंट लेकर प्लेट्स बनायी जाती थीं किंतु अब पूरा मैटर कंप्यूटर के माध्यम से सीधे प्लेट बनाने के लिए भेजा जाता है. तात्पर्य यह कि इन बदलावों के कारण मुद्रण में काफ़ी गति आ गयी है. लैपटॉप भी बहुत महंगे नहीं हैं. ब्रॉडबैंड घर में होना आम हो गया है. आज का हिंदी लेखक अपनी रचनाएं स्वयं टाइप कर लेता है और ब्लॉग और फ़ेसबुक द्वारा प्रचारित कर सकता है. ई-पत्रिकाओं की आजकल बाढ़ आयी हुई है. इस सबके बावजूद पाठकों का एक बड़ा वर्ग है जो हाथ में लेकर पत्रिकाएं पढ़ना पसंद करता है. शुरू से "कथाबिंब" का उद्देश्य ऐसे ही पाठकों की साहित्यिक क्षुधा को पूरा करना रहा है. रचनाकारों से पुनः निवेदन है कि लघुकथाएं, कविताएं, ग़ज़लें आदि हमें ई-मेल से न भेजकर साधारण डाक से ही भेजें.

हाल ही में समाचार मिला कि सत्यनारायण मिश्र जी का निधन हो गया. छठे दशक के अंत में मैं त्रिमूर्ति सर्वश्री नारायण दत्त जी, गिरिजाशंकर जी व सत्यनारायण मिश्र जी के संपर्क में आया. अक्सर ताड़देव स्थित "नवनीत हिंदी डाइज़ेस्ट" के कार्यालय जाना होता था. एक पुरानी-सी लकड़ी की बिल्डिंग में यह कार्यालय, प्रथम तल पर अवस्थित था. चढ़ते समय सीढ़ियां चरमराती थीं. ऊपर एक कमरे में तीनों बैठते थे. संपादक नारायण दत्त की मेज़ थोड़ी बड़ी और पास ही में दोनों सहायकों की मेज़ें. नारायण दत्त जी अपना सारा लेखन स्याही की दावात में होल्डर डुबो-डुबोकर किया करते थे. क़ाग़ज पर एक सरीखे सुंदर-सुंदर अक्षर उभर आते थे. मूलतः नारायण दत्त जी कन्नड़ थे. मैंने संपादन के गुर नारायण दत्त जी से ही सीखे. प्रणेता और संचालक श्रीगोपाल नेवटिया जी के निधन पश्चात "नवनीत" का प्रकाशन बंद हो गया जिसे बाद में "भारतीय विद्या भवन" ने निकालना शुरू किया. गिरिजाशंकर जी से हिंदी के किसी न किसी कार्यक्रम में अनेक बार भेंट होती रहती थी. मिश्र जी ने अपना प्रकाशन और पुस्तक विक्रय का काम शुरू किया. अनेक बार उनके घर पर जाना हुआ. यह विडंबना है कि आज तीनों की मात्र स्मृति ही शेष है.

●

आइए, इस अंक की कहानियों पर एक नज़र डालें .... पहली कहानी की लेखिका वीणा विज **"उदित"** लेखन की अनेक विधाओं में सक्रिय हैं. काफ़ी दिनों तक वे कश्मीर में रही हैं. आज कश्मीर बुरी तरह सुलग रहा है, आकाश में स्याह-काले बादल हैं. लेकिन कुछ समय पहले तक हालात इतने ख़राब नहीं थे. आम कश्मीरी अमन से रहता था. धीरे-धीरे *"सिलेटी बदलियां"* गहराती गयी हैं. अगली कहानी *"धोबीपाट"* (सुशांत सुप्रिय) एक नामी पहलवान हरपाल की कहानी है. पैंतालीस साल का हो जाने के बाद भी उसमें काफी दमख़म बाक़ी है. कुछ दिनों के लिए ही सही अपनी ग़रीबी से लड़ने के लिए वह कुश्ती के एक मुकाबले में हिस्सा लेना चाहता है. डॉ. निरुपमा राय की *"तुम्हारी अनुभूति"* एक अलग ही धरातल की कहानी है. यदि पति-पत्नी के बीच आपसी समझ हो तो छोटी-बड़ी हर किस्म की समस्या का हल खोजा जा सकता है. बेटी अनुभूति के विवाह के दिन प्रभा के सामने एक ऐसा रहस्य उदघाटित होता है जिसकी उसने कभी स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी. क्षण भर में उसका सारा अतीत सामने आ खड़ा होता है. "कथाबिंब" के पाठक मधु अरोड़ा से बख़ूबी परिचित हैं. आपने पत्रिका के लिए अनेक साहित्यकारों के साक्षात्कार लिये हैं. इधर मधु जी साहित्य की अन्यान्य विधाओं में सक्रिय हैं. हम जिस परिवेश में रहते आये होते हैं उसके इतने अभ्यस्त हो जाते हैं कि कुछ दूसरा सुहाता ही नहीं. सब कुछ सापेक्ष है. *"एक सुहानी शाम ... यूं ही बीती"* की महु लंदन घूमने आयी है, मेज़बानों के साथ पूरे दिन घूमने का प्लान है. वापस घर लौटते समय एक छोटी-सी दुर्घटना के कारण मीलों तक ट्रैफ़िक, घंटों तक रुका रहता है. यहां सब कुछ नियमबद्ध है. काश! भारत होता तो सारा मामला मिनटों में, मिलजुल कर निपटा लिया जाता. सुहानी शाम यूं बेकार तो न होती. अंतिम कहानी के लेखक गोविंद उपाध्याय *("सलीब पर लटका आदमी")* के नाम से भी पत्रिका के पाठक अपरिचित नहीं हैं. आदमी के हाथ में केवल संघर्ष और कर्म करना है. क्या फल होगा उसे नहीं सोचना है. नियति के आगे सब बेबस हैं. लालवानी ही नहीं हर कोई अपने-अपने सलीब पर लटका हुआ है.

●

रोज़ सुबह अख़बार का इंतज़ार रहता है. कुछ ऐसी ख़बरें जानने की, पढ़ने की उत्सुकता होती है जिनसे मन थोड़ा प्रसन्न हो जाये. ऐसा महसूस होता है कि भारत ही नहीं पूरे विश्व का हाल एक जैसा है. कहीं अमन-चैन नहीं है. अमीर देश हों या ग़रीब कहीं भी आम आदमी सुरक्षित नहीं है. आतंकवादी हमले, बम विस्फोट, स्कूल-कॉलेज़ों में, सड़कों पर गोली बारी, सेक्स स्कैंडल, बलात्कार ये सब आम समाचार हैं. इसके अलावा बाढ़, सूखा, भूकंप, भू-स्खलन जैसी प्राकृतिक

आपदाओं में भी जान-माल का नुकसान विश्व के किसी न किसी भाग में होता ही रहता है. इंटरनेट और स्मार्ट फ़ोन ने दुनिया की सब प्रकार की जानकारी हमारी हथेली पर ला कर रख दी है. समाचार चैनलों को बहुत सा मसाला "यू-ट्यूब" और "ट्यूटर हैंडल" से मिल जाता है. गांव, कस्बा हो या शहर, हर घटना का वीडियो बना कर सीधे चैनलों को भेजा जा सकता है. फिर उसी ख़बर को सारी चैनलें दिन भर दोहराती रहती हैं. एक ही वीडियो कई बार दिखाया जाता है और रिपोर्टर "ब्रेकिंग न्यूज़" और "एक्सक्लूसिव" का शीर्षक लगाकर उसी बात को उतनी ही बार अलग-अलग शब्दों में नाटकीय ढंग से दोहराता रहता है. हमारी चैनलों का एक और शगल है, किसी भी नेता के भाषण में से एक-आध वाक्य छांटकर "विवादित बयान" घोषित करके पूरे दिन जुगाली करना. योग-गुरू बाबा राम देव सरकार के तो चहेते हैं ही किंतु आजकल वे चैनलों के सबसे अधिक चहेते हैं. योग-गुरू अब मार्केटिंग-गुरू बन गये हैं. प्रत्येक चैनल पर हर कुछ मिनट बाद पतंजलि का विज्ञापन. कोई पूछे कि आख़िर पतंजलि का विज्ञापन बजट कितना है? अभी सुना है कि नागपुर में बाबा को सरकार ने सस्ते में ज़मीन दी है जहां और चीज़ों के अलावा वे जूते और जीन्स भी बनायेंगे. वैसे टीवी के विज्ञापनों पर कुछ पाबंदियां लगाने की बात भी चल रही है, लेकिन अभी कुछ स्पष्ट नहीं है.

दिल्ली के मुख्य मंत्री अरविंद केजरीवाल भी रोज़ मीडिया को व्यस्त रखते हैं. पहले वे धरने पर बैठते थे, आज आये दिन लोग उनके घर के सामने प्रदर्शन करते हैं. दिल्ली की समस्याओं को निपटाने और भ्रष्टाचार मुक्त करने के पश्चात अब वे "आप" का झंडा पंजाब, गुजरात और गोवा में फहराने की तैय्यारी में हैं. यह बात दीगर है कि "जंग" से उनकी जंग निरंतर ज़ारी है, न जाने "आप" के कितने विधायक किन-किन कांडों में लिप्त हैं, जेल गये हैं, निलंबित हैं. बेचारे अण्णा हज़ारे को कुछ कहते नहीं बन रहा है. यदि पुत्र कपूत निकल जाये तो पिता क्या करे! अण्णा जी ने तो कभी कोई धन संचय नहीं किया.

एक बार फिरसे चुनावों का मौसम आने वाला है. अभी लगभग छः महीने हैं. उत्तर प्रदेश का चुनाव सबसे महत्वपूर्ण है. मुख्यतः चार पार्टियां मैदान में हैं : भाजपा, समाजवादी, बीएसपी और कॉन्ग्रेस. रैलियां, रोड शो शुरू हो गये हैं. इस बार बाबू प्रशांत किशोर अपना जोर आजमाइश कॉन्ग्रेस के लिए कर रहे हैं. दिल्ली की पूर्व मुख्यमंत्री श्रीमती शीला दीक्षित को मुख्यमंत्री के प्रत्याशी के रूप में नामजद किया है. इन पर कॉमनवेल्थ खेलों के समय भ्रष्टाचार के अनेक आरोप लगे थे परिणामस्वरूप दिल्ली के चुनावों में उन्हें मुंह की खानी पड़ी. वे जेल जाने से बच जायें इसलिए उन्हें गोवा का राज्यपाल बना दिया गया. क्या उत्तर प्रदेश का मतदाता यह सब भूल जायेगा! श्रीमती शीला दीक्षित की मात्र यही योग्यता है कि वे ब्राह्मण हैं. उनके नाम से ब्राह्मण वोट भुनाये जा सकते हैं. सभी पार्टियां अपने-अपने वोट बैंक को लुभाने में लगी हैं. चाय पर चर्चा की तर्ज़ पर युवराज खाट पर चर्चा कर रहे हैं. काफ़ी भीड़ जुट रही है. जैसे ही सभा ख़त्म होती है जनता खाटें लूटने के लिए छीना-झपटी करने लगती है. और कुछ नहीं तो ७००-७५० रु. की खाट तो मिल ही जाती है. बाद में किसकी खटिया खड़ी हो क्या मालूम!

इस वर्ष इंद्र भगवान की भारतवर्ष पर कृपा रही. मौसम विभाग ने पहले से चेताया था कि इस साल सामान्य से अधिक वर्षा होगी. सारे देश में अच्छी बारिश हुई. ऐसी अनेक छोटी-छोटी नदियों में बाढ़ आ गयी जिनका लोगों ने नाम तक नहीं सुना था. अतिवृष्टि के कारण कई कमज़ोर पुल टूट गये, दुर्घटनाओं में या बहाव में वाहन बह गये. लाखों लोगों के घरों में पानी घुस गया. इस बार संसद के मानसून सत्र में कई बिल पास हुए. सबसे सकारात्मक बात यह हुई कि पक्ष-विपक्ष ने मिल-जुलकर जीएसटी का बिल पास किया. ऐसी संभावना है कि कर के इस प्रावधान से भविष्य में जनमानस को काफ़ी लाभ होगा!

कश्मीर में हिंसा रुकने का नाम नहीं ले रही है. ज़ेहाद के नाम पर छोटे-छोटे बच्चों को पत्थर फेंकने के लिए उकसाया जाता है. स्कूल, कॉलेज़ बंद हैं. लगभग दो महीने से कर्फ्यू लगा है. उग्रवादी नेता स्वयं सामने नहीं आते, उन्हें सरकार ने कड़ी सुरक्षा प्रदान की हुई है. सारी सुख-सुविधाएं उनके पास हैं. उनके बच्चे विदेशों में पढ़ रहे हैं. इस संदर्भ में भी केंद्र ने अच्छी पहल की. राजनीतिक पार्टियों का एक सर्वदलीय दल कश्मीर गया और सारी स्थिति का नज़दीक से ज़ायजा लिया. उम्मीद है कि जल्द कश्मीर के हालात सामान्य होंगे.

●

हाल में, ब्राज़ील में संपन्न ओलंपिक खेलों में भारत को मात्र दो मेडल मिले, एक चांदी का और दूसरा कांस्य. इस पर राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री से लेकर पूरा देश इतरा रहा है. वास्तव में इस "उपलब्धि" पर सुपर पॉवर बनने वाले १२५ करोड़ लोगों के देश के कर्णधारों के सिर शर्म से झुकने चाहिए. हर चार साल बाद ओलंपिक होते हैं और कुछ समय तक प्रत्येक बार वही रोना. चार साल या आठ साल बाद होने वाले ओलंपिक खेलों के लिए क्या अभी से खिलाड़ियों के प्रशिक्षण में नहीं जुटा जा सकता. चयन करके, पूरे जीवन-काल के लिए उनके संपूर्ण भरण-पोषण की ज़िम्मेदारी उठाना महंगा सौदा नहीं होगा.

अरविंद

लेटर-बॉक्स

▶▶ 'कथाबिंब' का अप्रैल-जून-२०१६ अंक प्राप्त हुआ. पत्रिका का मुखपृष्ठ अत्यंत आकर्षक है. संपादकीय में आपने कई नयी स्थितियों का संकेत किया है, जो कि हमारे देश में दिखायी पड़ रही हैं, जैसे कि भारत, इंडिया से अलग 'अल्ट्रा इंडिया' यानी सारी सुख–सुविधाओं से संपन्न लोग — नव कुबेर. शायद आप मेरी इस बात से सहमत होंगे कि 'भारत' वाले चुनावों में वोट देकर सरकारें बनाते हैं, इंडिया और 'अल्ट्रा इंडिया' के लोग इन सरकारों को दिशा निर्देश देते हैं और अपने तरीक़े से उनका संचालन करते हैं. 'भारत' के लोग गांवों में भी रहते हैं और शहरों में भी रहते हैं, लेकिन चुनाव हो जाने के बाद ये लोग किसी सरकार को दिखाई नहीं देते हैं.

पत्रिका के इस अंक में प्रकाशित कहानियों में 'कोई लौटा दे मेरे बीते हुए दिन' कहानी एक धरोहर कहानी है, जिसकी नायिका दहेज में दिये गये सारे सामान वापस मिलने पर एक प्रश्न उठाती है कि ससुराल जाते समय इन सामानों के साथ और भी तो सामान था और वह सामान था उसके सतरंगी सपने, सुनहरी आशाएं, ढेर सारी सलोनी उमंगें और उन सपनों, आशाओं एवं उमंगों के पूरा होने के लिए सहज, सरल विश्वास. नायिका पूछती है कि उसका वह सामान कब लौटेगा. इसका जवाब शायद किसी के पास नहीं है. मालती जोशी जी को इतनी सुंदर कहानी के लिए हार्दिक बधाई और उसके चयन एवं प्रकाशन के लिए आपको हार्दिक धन्यवाद. अंक की अन्य कहानियां भी रोचक एवं स्तरीय हैं.

लघुकथाओं में 'स्त्री शिक्षा', 'अपहरण', 'अशुभ बहू' एवं 'भगवान' अत्यंत मार्मिक एवं यथार्थ का बोध कराने वाली लघुकथाएं हैं. 'बाइस्कोप' स्तंभ यदि आप किसी तरह (किसी और के द्वारा भी) फिर से प्रारंभ कर सकें तो पाठकों के लिए अच्छा होगा. हमें उसका अभाव खटकता है.

– शिवकुमार कश्यप
१५–बी, पौर्णमी अपार्टमेंट, पांच पाखाड़ी, मानदेव वाड़ी, ठाणे (पश्चिम)-४००६०२.
मो. : ९८६९२५९७०१

▶▶ 'कथाबिंब' का अप्रैल-जून २०१६ अंक मिला. कृपया धन्यवाद स्वीकार करें. वस्तुत: पत्रिका के नये अंक का बेसब्री से इंतज़ार रहता है. एक तो आप अपने संपादकीय में दुनिया जहान में पिछले तीन महीनों में क्या कुछ घट गया, उसका भीतरी सच प्रस्तुत कर देते हैं. बिना लाग लपेट, किंतु-परंतु के. दूसरा, अंक के लिए आप कहानियों का चयन इतनी कुशलता और ख़ूबसूरती से करते हैं कि मन 'वाह-वाह' कह उठता है. ईश्वर आपकी एवं मंजुश्री जी की चयन एवं संपादन-सामर्थ्य में निरंतर वृद्धि करें, यह कामना है.

इस अंक में पूज्या मालती दीदी (वे मेरी धर्म बहन हैं) की कहानी पढ़कर निहाल हो गया. वे अपने पात्रों के मन में गहरे उतर कर लिखती हैं. नारी मन की तो वे सशक्त व्याख्याकार हैं. शेष सभी कहानियां भी पठनीय हैं. 'औरतनामा' स्तंभ स्वागतेय है. स्तंभ में क्या अपेक्षित है अर्थात इसमें क्या छापना चाहते हैं, यदि इसको स्पष्ट कर दिया जाये, तो रचनाकारों को सुविधा होगी.

अंक की लघुकथाएं बढ़िया हैं और झकझोरती हैं, कुछ ख़ास कहती भी हैं, लेकिन कुछ शीर्षक ठीक नहीं लगे. कृपया भविष्य में इस बात पर विचार करें. पत्रिका की परंपरा के अनुसार आवरण पृष्ठ सुंदर होने के साथ-साथ प्रकृति से जोड़ता भी है. ग़ज़लें उम्दा हैं. सुषमा मुनींद्र जी पर केंद्रित 'आमने-सामने' स्तंभ बहुत उपयोगी रहा. कथा लेखन के क्षेत्र में उनकी साधना प्रणम्य है.

– युगेश शर्मा, *व्यंकटेश कीर्ति,*
११, सौम्या एन्क्लेव एक्सटेंशन,
सियाराम कॉलोनी, चूनाभट्टी, भोपाल-४६२०१६
मो. ९४०७२७८९६५.

▶▶ वर्तमान अंक, 'कुछ कही, कुछ अनकही' से आरंभ करुं तो, ख़ासकर प्रकाशित कहानियों की रुचि को क़ायम रखते हुए उनकी मूल आत्माओं का संक्षिप्तीकरण दृष्टव्य है. राष्ट्रीय राजनीतिक उथल-पुथल और जन समस्याओं

के समाधान से भागती राजनीति जो अर्थ, आपराधिक लोगों की भीड़ और पद-प्रभावों के दुरुपयोगों की अंतहीन कहानी है, सदा की तरह अत्यंत प्रभावी है.

कहानियां — 'कोई लौटा दे... दिन', 'उड़ान', 'एक और चेहरा', 'ज़ीरो बटा सन्नाटा', 'हत्यारिन', 'अमल का स्टाइल' अच्छी और प्रभावी कहानियां हैं.

मेरी नज़र में, 'कोई लौटा...' मालती जोशी की कहानी प्रेरक, प्रभावी रही है. इस कहानी की अंतिम पंक्ति — 'पापा ... मेरा यह सामान कब लौटेगा?' अप्रत्याशित मर्म को छूती ही नहीं लंबे काल तक कहानी का यह अंत पाठकों को झकझोरता रहेगा. मालती जोशी को कालजयी रचना के लिए विशेष साधुवाद.

– सच्चिदानंद 'इंसान',
सहारा मिशन स्कूल, जी. पी. वर्मा लेन, मुन्दीचक, भागलपुर-८१२००१.

▶▶ 'कथाबिंब' का जनवरी-मार्च '१६ अंक मिला था. पत्रिका की निरंतरता के प्रति बधाई. पढ़कर लगा कि कुछ रचनाओं पर बात की जानी चाहिए. 'सिर्फ़ आधे घंटे के लिए' कहानी भारतीय परिवेश में पली-बढ़ी संस्कारवान स्त्री की शील-संकोच युक्त उस स्वभाव की कहानी है जो महिला डॉक्टर के सेक्सुअली एक्टिव शब्द सुन कर भी असहज महसूस करती है पर वही स्त्री पति द्वारा हाशिये पर डाल दिये जाने के बाद भी अपनी दोनों बच्चियों के प्रति पूरी ज़िम्मेदारी का निर्वहन करते हुए अचानक एन्ड्रूज़ जैसे आकर्षक पुरुष से मुलाक़ात होने के बाद वह ख़ुद को समस्त बीमारियों से छुटकारा पाने की मुहिम में दैहिक सुख के लिए ख़ुद का उसके घर जाना और देह समर्पण में कतई संकोच नहीं करती है. दरअसल कहानी अपने उत्तरार्द्ध में संस्कारजनित व्यवहार को तोड़ती है और सेक्सुअली आत्मतुष्टि अनजाने पर-पुरुष से प्राप्त करती है. क्या यह किसी स्त्री का असली रूप है? इस तरह यह कहानी अपने कथ्य की परिणति में सेक्स तुष्टि को तमाम सामाजिक-मानवीय संस्कारों व परिवारों में ज़िम्मेदारियों से ऊपर मानती है जो पाठक को क्षणिक रूप से एन्ड्रूज़ जैसा बन जाने का सुख तो दे सकती है पर संघर्षशील जीवन के प्रति आस्था नहीं पैदा करती है. इस तरह अगले ही क्षण अंतरा के प्रति पाठक की सहानुभूति ख़त्म हो जाती है जबकि 'हिरवे' (सुभाष रंजन) कहानी अपने कथ्य में पुरानी (जैसा कि संपादकीय में कहा गया है) होते हुए भी अपने ट्रीटमेंट में अदभुत है. भाषा अपने कथ्य के निर्वाह में जिस लयात्मकता व कलात्मकता के साथ आगे बढ़ती है प्रशंसनीय है. घर-समाज में जीते — जाने कितने काकू-काकी मां, वरुण, अरविंदम् दा, शुभ्रा बोआी, तथा बेटे-बेटी-दामाद द्वारा रिश्तों को बलि चढ़ाते, अपने स्वार्थ में जीते जीवन की कहानी मुखरित होती है. दरअसल शिक्षा तो आज धनकमाऊ पूत पैदा करती है वह कहां संस्कार जनित स्वभाव और संवेदना को जन्म दे पा रही है. कहानी अपने कहन में प्रवाहपूर्ण है और यही कारण है कि पाठक कहानी के साथ सिर्फ़ संवेदना को ही नहीं जीता बल्कि कल, आज और कल के अपने व्यवहार के प्रति चूक और सतर्कता का भी विश्लेषण करता है. कहानी में पूरा परिवेश जीवंत हो उठा है और अंततः काकू-काकी मां की फ़ोटो संपत्ति का बंदर बांट कर रहे, बेटे-बेटियों-बहुओं के मुख पर उससे बड़ा तमाचा और क्या हो सकता है कि अरविंदम् दा की नन्हीं बेटी कबाड़ साबित हुए सामानों के मध्य से दादा-दादी की फ़ोटो उठाकर अपने साथ ले जाने की बात कहती है. यह रिश्तों की ठूंठ हुए बिरवे में कोपलों के फिर से फूटने का संकेत है और कहानी पाठकों के अंदर आशा की एक किरण बिखेर देती है. 'कोबरा हार गया' और 'मां का संकेत' लघु-कथाएं अपने अत्यंत सीमित कलेवर में भी एक नया संदेश छोड़ जाती हैं.

'बाइस्कोप' में सविता बजाज का लेखन निःसंदेह पाठकों के लिए नवीनतम जानकारियां लेकर आता रहा है पर बीमारी के चलते उनके द्वारा लेखन न कर पाने की विवशता पाठकों के लिए पीड़ादायक तो है ही. उनके द्वारा व्यक्त पीड़ादायक सच्चाइयों का सामना तो कभी न कभी सबको पड़ता है. 'कौन अपना कौन पराया' भला कहां परख में आता है? वक़्त से बड़ा अपना नज़दीकी कौन है? अन्य स्तंभों की सामग्री भी पठनीय है. औरत (सदाशिव कौतुक), राजेंद्र तिवारी और संतोषकुमार तिवारी की कविताएं पठनीय हैं.

पत्रिका की निरंतरता बनी हुई है यह क्या कम

महत्वपूर्ण है? 'आमने-सामने', 'सागर-सीपी' से नयी जानकारियां तो मिलती ही हैं. कहानी में, उपन्यास में, क्या लिखा जा रहा है और कितना समकालीन है? आलोचकों की निग़ाह में यह कितना सार्थक है उनके दृष्टिकोण को जानने के लिए तथा सम-सामयिक विषयों की पड़ताल हेतु लेख, आलेख छापा जाना भी ज़रूरी लगता है.

– डॉ. शोभनाथ शुक्ल
संपादक, 'कथा समवेत',
१२७४/१७अ, बढ़ैयावार,
सिविल लाइन-२, सुलतानपुर-२२८००१.
मो.: ९४१५१३६२६७.

▸▸ 'कथाबिंब' के अंक मुझे अनवरत मिल रहे हैं. पत्रिका को आद्यांत पढ़ता भी हूं. पत्र-प्रतिक्रिया के लिए, अपनी रचनाओं के प्रेषण के लिए समय निकाल पाना दूभर हो गया है जब से 'अनंतिम' शुरू की है. क्षमा प्रार्थी हूं.

'कथाबिंब' अप्रैल-जून २०१६ अंक मेरे सामने है. मालती जोशी को 'हिंदुस्तान' में ख़ूब पढ़ा है. उनका परिवार–विमर्श, 'कोई लौटा दे मेरे बीते हुए दिन' में पूर्ववत मौज़ूद है. 'अमल और आश्वस्ति' को चरित्र में ढालते हुए सुषमा मुनींद्र अपनी मौलिकता को फिर एक बार सिद्धि की धरा पर स्थापित करती हैं — 'अमल का स्टाइल है.' लघुकथा 'मॉर्निंग वाक' मन को छूती है. मैं डॉ. नरेंद्र नाथ लाहा को हृदय से प्रणाम करता हूं. राकेश भ्रमरजी अपनी ग़ज़लों में एक अहसास दे पाने में क़ामयाब रहे हैं. आपकी संपादकीय दृष्टि का मैं सदा से कायल रहा हूं. किसी संदर्भ पर बेबाक टिप्पणी आपकी विशेषता है. कश्मीर के हालात पर पूरे देश की नज़र है. आपका आलेख प्रतीक्षित है.

- सतीश गुप्ता
के-२२१, यशोदा नगर, कानपुर-२०८०११.
मो. : ९७९३५४७६२९

▸▸ 'कथाबिंब' पत्रिका के अंक नियमित प्राप्त हो रहे हैं. धन्यवाद. 'कथाबिंब' कथाप्रधान स्तरीय पत्रिका है. सुषमा मुनींद्र जी की कहानी 'अमल का स्टाइल है' तलाक के दुष्परिणामों को झेलती अमल किसी के सुख को देखकर असहनशील हो जाती है. वह माता-पिता में से किसका चुनाव करे उसे समझ में नहीं आता है. इस विकट परिस्थिति का समाधान बहुत मुश्किल था पर अमल समाधान निकाल लेती है. भले ही यह समाधान समष्टिगत न होकर व्यक्तिगत था. कहानी झकझोरती है. नीता श्रीवास्तव जी की कहानी 'ज़ीरो बटा सन्नाटा' सात दिन के क़ैदी के जीवन में अमूल-चूल परिवर्तन ला देती है. लेखिका ने ठीक ही कहा है कि हमारे मन में जो बात हो वह कह देनी चाहिए, हो सकता है कि वह बात किसी के जीवन को बदल दे. कहानी में आशावाद है, ऐसे प्रयत्न चलते रहना चाहिए.

– लखन लाल पाल
अज़वारी रोड, नया रामगर,
कृष्णा धाम के आगे, उरई-२८५००१.
मो.: ९२३६४८००७५

▸▸ 'कथाबिंब' अप्रैल-जून २०१६ प्राप्त हुआ. धन्यवाद. पढ़कर पता चला डॉ. सतीश दुबे ७५ वर्ष के हो गये हैं, लिखने में उंगलियां साथ नहीं दे रही हैं. फिर भी उन्होंने पत्र लिखा है. आप संपादकीय में उस अंक की सभी कहानियों का एक खाका खींच देते हैं उससे पाठकों को पहले कौन कहानी पढ़नी चाहिए स्पष्ट हो जाता है. फ़िल्मों की लेखिका सविता बजाज आपसे अलग हो गयी हैं. अच्छा होता आप फ़िल्म की मायानगरी मुंबई में रहकर 'कथाबिंब' का एक अनोखा फ़िल्म विशेषांक निकालते. जैसा कि राजेंद्र यादव ने 'हंस' में निकाला था. मुझे इस अंक की 'उड़ान' कहानी सर्वोत्कृष्ट लगी. मेरी भी उम्र ६५ वर्ष की हो गयी है. बहुत कुछ लिखना व पढ़ना चाहता हूं. परंतु थोड़ा आलसी भी हूं. पत्रिका नियमित भेजते रहें.

– केदारनाथ 'सविता'
पुलिस चौकी रोड, लालडिग्गी, सिंहगढ़ गली,
(चिकाने टोला), मीरजापुर-२३१००१ (उ. प्र.)
मो. : ९९३५६८५०६८.

▸▸ 'कथाबिंब' का अप्रैल-जून अंक प्राप्त हुआ. कथाबिंब की कहानियों को पढ़कर समाज को समझने की समझ निश्चित ही विकसित होती है. श्रीमती मालती जोशी जी की कहानी मर्मस्पर्शी लगी. सभी रचनाएं कड़े मापदंडों द्वारा परखी होने की वजह से सदा बेजोड़ ही होती हैं.

मेरी कहानी का 'कथाबिंब' में छप जाना मेरे लिए भी बहुत बड़ी उपलब्धि है. धन्यवाद.

– नीता श्रीवास्तव
२९४, देवपुरी कॉलोनी,
महू (म.प्र.)-४५३४४१.
मो. : ९८९३४०९९१४.

कहानी

सिलेटी बदलियां

वीणा विज 'उदित'

वादी में आये दिन हो रही वारदातों को सुन-सुनकर भय से जकड़े मन के दरीचे मानो सुबह की स्वर्णिम आभा से कुछ खिल से गये थे. सिलेटी बदलियों से छाया अंधकार छंटता दिखाई दे रहा था. तभी तो ताहिरा की अम्मी हाथों में नुन चाय (नमकीन चाय) और गिरदा (तंदूरी रोटी) लेकर आयी और गहरे काले रंग के चट्टाननुमा पत्थर पर बैठ गयी, जहां उसके खाविंद अपने ख़्यालों में गुम बैठे हुए थे. हवा में साथ बहते दरिया के पानी के शोर के साथ-साथ उनकी चाय की चुस्कियों का स्वर भी घुल रहा था.

श्रीनगर से पहलगाम जाते हुए वहां पहुंचने से तक़रीबन दस-ग्यारह कि. मी. पूर्व ही पहाड़ की तलहटी में दरिया किनारे सौ-डेढ़ सौ घरों से आबाद एक छोटा सा गांव है 'बटकुट' जहां हर घर की खिड़की खुलते ही नदी का शोर भीतर के हर हिस्से पर अपना आधिपत्य जमा लेता है. पहाड़ी की ढलान पर कुछ पक्के घर जिनकी खपरैल व टीन की छतें हैं, अपने-अपने खेतों की हरियाली के मध्य सजे खड़े हैं. वहीं सांप-सी रेंगती सिलेटी रंग की सड़क पहाड़ों के घनत्व को अपने से बांधती उत्तर की ओर पहलगाम यानी कि आख़री पड़ाव तक बढ़ रही है. इसी सड़क के बायीं ओर घनी बस्ती है. तराई में बसी इस बस्ती के बायीं ओर लिद्दर दरिया पहाड़ों से गिरता-पड़ता आकर कुछ पल का चैन पाता है, फिर आगे बढ़ जाता है शोर मचाते हुए. बस्ती का पश्चिमी सिरा इसी दरिया की मस्त धाराओं से घिरा रहता है. वहां खेत ही खेत हैं. जिनके बीच-बीच में पक्के घर बने हुए हैं. खेतों की बाड़ के साथ-साथ यईड़ (विलो) के ऊंचे-ऊंचे वृक्ष हर खेत की शोभा हैं. जो हवा के साथ डोलते रहते हैं. पतली लंबी पत्तियां धूप में चांदी-सी चमकती, हवा में लहराती अनुपम सौंदर्य बिखेरती हैं. कई खेतों की हदें, पेड़ों की डंगालों, टाट के टुकड़े, टीन के टुकड़े, लकड़ी के फहों और भारी भरकम वादी के पत्थरों से भी बनी हैं वहां. सड़क किनारे पहाड़ों की तलहटी पर कई खेतों के किनारे अखरोट के पेड़ बहुतायत में हैं. यहां तक कि सड़क के किनारे घनी छांव देते अखरोट के पेड़ों तले कश्मीरी बालाएं व युवतियां बैठ गप्प-शप्प कर लेती हैं. ये अखरोट के पेड़ किसी न किसी की मिल्कियत होते हैं, सो आम जनता इनको फलों से लदा देखकर भी किसी और के अखरोट नहीं तोड़ती. ये वहां का आम चलन है. बस्ती के क़रीब दो फर्लांग पहले ही 'दारु-उल-उलूम' मदरसा है. यहां बच्चों को उर्दू व फ़ारसी की आयतें पढ़ायी जाती हैं और क़ुरान शरीफ़ की तालीम दी जा जाती है.

फिज़ा में अच्छा-ख़ासा अमन-ओ-चैन है, कुदरत से मेल खाता. लेकिन २७ साल पहले जब से उग्रवाद ने कश्मीर में अपने जबड़े फैलाये हैं, तब से आम जनता ज़हनी तौर पर डरी-डरी रहती है कि न जाने कब ये भयंकर जबड़े उन्हें भी चबा डालेंगे... क्या मालूम? और वो किस शक़्ल को इख़्तियार करेंगे? मसलन, घर से नवजवान लेकर, जवान लड़की लेकर, धन-दौलत लेकर या और कोई ज़ुल्म ढाकर. वो भी 'ज़िहाद' के नाम पर. जब कि सच्चा ज़िहादी वही है जो भीतर के शैतान से ज़िहाद करता है. क़ुरान-ए-शरीफ़ का तो यही असूल है. लेकिन मुंह खोलकर कोई भी इस विषय पर नहीं बोलता. हां, अलबत्ता उनकी रूह डरी और सहमी-सी रहती है कि न जाने कब ये लोग उनकी औलादों को बंदूक की नोंक पर सरहद पार ट्रेनिंग पर ले जायेंगे और उनके पाक हाथों में 'एके-४७' थमा कर उग्रवादी बना देंगे. सारी की सारी वादी स्वर्ग-सी

सुंदर होते हुए भी अपने सिर पर इन सिलेटी बदलियों की छाया देखकर भीतर ही भीतर कराह रही है. हर शख़्स यहां सच्चा मुसलमान बना फिरता है. पांच नमाजें पढ़कर व ख़ास कर जुम्मे के जुम्मे मस्ज़िद में हाज़री देकर अपने इर्द-गिर्द घूमते अंजाने दहशत गर्दों से बचे रहने का भरसक यत्न करता है. गुलबाबा भी एक पाक बंदे हैं ख़ुदा के. वे भी सारे रोज़े रखते हैं हमेशा से ही. लेकिन हालात बिगड़ते देखकर वे मायूस हो बैठे रहते थे, किसी सोच में डूबे. हसीना बानो उन्हें कभी छेड़ती नहीं थी कि वे क्या और क्यों इतना सोचते हैं. आज भी हसीना बानू नुन चाय की चुस्कियां लेती गुपचुप बैठी रही.

बस्ती से दो फर्लांग से भी पहले गुलबाबा ने चार एकड़ के सेबों के बाग़ के बीचों-बीच अपना पक्का मकान बनाया हुआ है. पहाड़ के दामन से लेकर दरिया तक का कछार बहुत मीठे फल देता है. साथ ही घर के पीछे किचन गार्डन बनाया हुआ है. हसीना बानू का हसीन ख़्वाब है वह सब्ज़ियों का बाड़ा. बस्ती में तो आठ-दस दुकाने हैं रोज़मर्रा की ख़रीदारी करने को एक ओर. बाक़ी, मदरसे के पास पेंट की और गैस की दुकान भी है. एक बैंक भी है. जिससे आगे है टीन का लाल छत वाला अधूरा मकान, जिसकी बाउंड्री की टीन की खड़ी चादरों पर 'एअरसेल' वालों ने अपने विज्ञापन छापे हुए हैं. जब २०१४ में कश्मीर में बाढ़ आयी थी, तो केवल एअरसेल ही काम कर रहा था. मानो, घर-घर पर अपना नाम लिखकर आड़े वक़्त में उसने लोगों का साथ निभाया था. ख़ैर, काफ़ी छाया है यहां यह नाम. गुल बाबा के मकान के पीछे की ओर पहाड़ी नदी ढलान पर उतरती हुई कई बार रुख़ बदल लेती है, सो उसकी तीन धाराएं बह रही हैं थोड़ी-थोडी दूरी पर. उनके बीच की ज़मीन के टुकड़ों पर यईड़ के पेड़ भरे हुए हैं. ये छोटे-छोटे नदी के द्वीप हैं. सूर्य की सीधी रोशनी पड़ने से पानी के साथ लुढ़कते आते पत्थरों से इन द्वीपों के तट चम-चम चमकते हैं और इस ओर पानी का शोर भी तिगुना हो जाता है. घर में टी. वी. भी ज़ोर से लगाना पड़ता है, नहीं तो दरिया का शोर ही अपना राग अलापता रहता है.

दरिया के उस पार एक मील पर 'मोहरा' गांव से गुलबाबा अपने बेटे सालिक के लिए बहू लाये थे शाज़िया. शाज़िया बेहद सुंदर सुशील थी. उसके आ जाने से ताहिरा को भाभी के रूप में सखी मिल गयी थी. वह उसकी पढ़ाई

जन्म लाहौर में.
शिक्षा : एम. ए., एम. एड (जबलपुर).

: प्रकाशन :

'पिघलती शिला', 'तुरवाई तथा अन्य कहानियां' (कहानी-संग्रह); 'सन्नाटों के पहरेदार', 'क़दम ज़िंदगी के' (काव्य-संग्रह).

: अभिरुचियां :

नृत्य-नाटक व पेंटिंग. हिंदी और पंजाबी के लगभग सौ नाटकों, धारावाहिकों व छः फ़िल्मों में अभिनय.

: अन्य :

बिज़नेसमैन पति के साथ कश्मीर में काफ़ी समय तक रहना, बेटों के साथ अमेरिका प्रवास देश-विदेश में रहते हुए राष्ट्रीय व ई-पत्रिकाओं से जुड़ाव.

: सम्मानः

पंजाब कला साहित्य अकादमी, श्री कृष्ण कला साहित्य अकादमी (इंदौर), सर्वभाषा संस्कृति समिति (कश्मीर) द्वारा अलंकृत.

में भी मदद करती और दोनों हाथ में हाथ डाले बाग़ की सैर भी करतीं. यहां तक कि दोनों लेटकर टी. वी. भी साथ ही देखतीं. इन दोनों को हंसी ठिठोली करते देखकर अम्मी अब्बू के चेहरे भी खिले रहते थे. सालिक 'चिनानी हाईडल प्रोज़ेक्ट' में सरकारी नौकरी में था. वह घर आने के बहाने ढूंढता रहता और नयी-नवेली दुल्हन के साथ वीक–एंड मनाने आता था. ताहिरा अभी पंद्रहवे साल में थी और ऐशमुकाम में बस द्वारा आठ मील दूर स्कूल जाती थी. ईद की छुट्टियां थीं. सालिक ईद पर घर आया हुआ था. सुबह उठकर उसने अम्मी-अब्बू से कहा — 'हम तीनों पहलगाम जा रहे हैं. अपनी मारवति में (मारुति) और रात किसी होटल में ठहर कर कल शाम को वापिस आ जायेंगे.

गुलबाबा ने ख़ुशी-ख़ुशी हसीना बानू को हिदायत दी, 'बच्चों को टिफ़िन तैयार कर दो. दरिया किनारे बैठकर

खायेंगे.' ताहिरा दौड़ी आयी और अब्बू के गले में झूल गयी. उनकी लाडो उनकी कमज़ोरी थी और उसे सौ रुपये का नोट पकड़ाते हुए बोले, 'ढेर सारे कोन खाना आईसक्रीम के, यह ले.' और दो घंटे में वे निकल गये पिकनिक पर. मौसम खुला था. बाग़ में पेड़ों को देखते रहे. अभी छोटा-छोटा फल आया था. शाम ढले भीतर आ अपनी गद्दी पर बैठे और हुक्का सुलगवा लिया. हसीना बानो कश्मीरी गीत गुनगुनाती चूल्हे पर खाना बना रही थी. सालिक के आने से उसका सारा का सारा ममत्व खाने बनाने में दिखाई देता था. ढेर सारा रोगन जोश पक रहा था. भत्त (चावल) और कड़म के साग के साथ चिकन बनाया गया था. दोनों ने खाना खाया और गुलबाबा पुन: अपनी मसनद के सहारे बैठ हुक्के की नीलचा को मुंह में डाल गुड़गुड़ाने लगे. उन्हें लगा सेंक कुछ कम है वो नशा नहीं बन रहा तो थोड़ा तंबाखू डाल, दो दहकते कोयले चूल्हे से हुक्के की चिलम में और डलवाये और बैठ गये, गुड़-गुड़ाकर सूटे लगाने. अपने परिवार में व्याप्त हंसी ख़ुशी देख अपनी क़िस्मत में वह स्वयं ही रश्क कर उठे. हसीना बानू से बोले जा रहे थे लेकिन वो तो उन की बातों की लय में हूं-हां करती कब नींद के आगोश में जा थमी उन्हें पता ही नहीं चला. उन्होंने उस पर नज़र डाली और मुस्कुराकर स्वयं भी बड़ा सा मुंह खोलकर जम्हाई ली, हुक्का हटाया और उसके हम बिस्तर हो गये.

ठंडी ज़मीन पर पहले तिरपाल बिछा, उस पर कंबल, फिर दरी और उस पर नमदा (गरम ऊनी कालीन) बिछाने के बाद बिस्तर लगता है कश्मीरी घरों में. पलंग का रिवाज़ तो शहरों में अब चालू हो गया है. जूते-चप्पल घर के भीतर लाये ही नहीं जाते सो कालीन बिछे रहते हैं ज़्यादातर कुशन दीवार के साथ रखे रहते हैं. सो गुलबाबा और हसीना बानू भी प्रथम पहर की गहरी नींद की एक झपकी अभी ले भी न पाये थे कि बाहर से सांकल खटखटाने की ज़ोर-ज़ोर से आवाज़ें सुनाई दीं. दोनों ही नींद की कगार से बाहर निकल घबराये, 'हे अल्ला, रहमत करना हमारे बच्चों पर.'

हसीना बानू, 'ला, इल्लाह-इल्लाह अस्तक-फ़ू-अल्लाह' कलमा पढ़े जाने लगी.

गुलबाबा ने किसी भावी आशंका में दरवाज़े की ओर क़दम बढ़ाये क्योंकि आज बच्चे जो बाहर गये थे — उसे उनके साथ कुछ अनहोनी घटने का भय था. ख़ैर, जैसे ही अंदर से कुंडी खोली तो किवाड़ खुलते ही सामने बड़ी-बड़ी बंदूकें थामे कुछ लोग उसे भीतर की ओर धकेलते घर के भीतर घुस आये. हसीना ने बत्ती जला दी थी तब तक. रोशनी में अपने खाविंद को पिस्तौलों से भीतर धकेलते कुछ अनजान लोगों को देख वह ज़ोर से चीख़ी और थर-थर कांपने लगी. तभी पीछे से एक बंदूकधारी ने आगे बढ़ अपना गंदा-बदबूदार हाथ उसके मुंह पर रखकर उसकी आवाज़ बंद कर दी. वैसे भी उस बियाबान में व घर में भी कोई और व्यक्ति न होने के कारण उस बेचारी की चीख़ दरिया के पानी के शोर में दबकर रह गयी थी. तीसरा बंदूकधारी बड़े रुआब से सबको पीछे से भीतर धकेलता गुर्राया, 'जल्दी कर, कुज खांड़ को रख. बहोत भुक्ख लग्गी है.' वे तीनों पहरावे से अफगान लग रहे थे. उनका रंग-रूप, डील-डौल लंबा ऊंचा था और पहरावा कश्मीरी उग्रवादियों या ज़िहादियों से अलहदा था. मज़हब के लिए मर-मिटने का जज़्बा तो कहीं था ही नहीं. ये दहशत गर्द सरहद पार के लग रहे थे. ख़ैर, हसीना बानू को क्या ख़बर थी कि आज वह इतना स्वादिष्ट ढेर सारा सालण (खाना) इन अल्लाह के बंदों के लिए बना रही थी. भूखे की भूख मिटाना तो सबाब है. यह सोच उसने बुझे मिट्टी के चूल्हे में फटाफट बालण डाल के पीपणी से फूंक मारी. आग भकाभक जल पड़ी और उसने चावल चढ़ा दिये. और साथ ही आधी अंगीठी के सेंक पर सालण गरम करने को रख दिया.

भूख की बात सुनकर गुलबाबा भी संयत हो गये थे. वे आगे बढ़कर तीनों के हाथ धुलवाने लगे. ख़ौफजदा होते हुए भी बहुत सलीके और इज़्ज़त से हसीना बानू ने स्टील की थालियों में उन्हें भत्त और भेड़ू के गोश्त का सालण परोसा. वे आपस में पश्तों में कुछ बातें कर रहे थे. खाना ख़त्म होने पर हाथ धुलवाये. तीनों ने हुक्के की चिलम फिर सुलगवाई और बारी-बारी से कश खींचे. ज़ोर से डकार लेते हुए तीनों ने अपनी बंदूकें कंधों पर डालीं. आंधी की तरह वे आये थे, तूफ़ान की तरह घर से बाहर निकल गये. शायद, दूर अंधेरे में पेड़ों के झुरमुट में उनकी गाड़ी खड़ी थी छिपी हुई. क्योंकि रात के सन्नाटे को चीरती उसके स्टार्ट होने की आवाज़ आयी और फिर गुम हो गयी.

उनके बाहर जाते ही गुलबाबा ने सांकल लगायी और ऊपरवाले का शुकराना किया हसीना बानू तो जलता चूल्हा वैसा ही छोड़कर उनसे आकर लिपट गयी. अब दोनों ख़ुदा

का शुकर कर रहे थे कि इतने में ही बच गये. वे सुना करते थे कि उग्रवादी या ज़िहादी सरहदी इलाक़ों में आधी रात को खाने-पीने वहां के घरों में आया करते हैं. और रात का अंधकार बढ़ते ही यह दहशत वहां के घरों में समायी रहती थी. लेकिन आज की रात उनके साथ यह वाक़या गुज़रा तो उन्हें उन लोगों का दर्द पता चला. दोनों लिहाफ़ ओढ़े बैठे रह गये थे. नींद तो कोसों दूर चली गयी थी. पास की मस्ज़िद से अजान की आवाज़ आयी तो नमाज़ अदा कर शायद बैठे-बैठे दोनों ने एक झपकी ले ली. मानो ख़ुदा ने अपनी रहमत का हाथ उनके सिर पर रखा हो. अब सुबह की स्वर्णिम बेला में दोनों के दहशत से जकड़े मन के दरीचे कुछ खुल गये थे.

दोनों ने तय किया कि रात के गुजिश्त (बीत गये) का ज़िक्र वे कभी भी, किसी से भी नहीं करेंगे. दोनों ने इस वाक़ये पर मुंह सी लिया. ख़ुदा की बंदगी की कि ख़ुदा ने उन दरिंदों से अपने बंदों को अपनी रहमत में ले लिया था. उधर दिन बीता तो सांझ ढलते ही तीनों बच्चों की कार आ गयी. उनके उल्लसित चेहरों पर ख़ुशियां बिखरी देखकर ये भी ख़ूब ख़ुशी जताने लगे. बच्चों को लगा कि अम्मी-अब्बू भी पीछे से ख़ूब मस्त रहे. उनकी बनावटी हंसी ज़्यादा ही बिखर रही थी क्योंकि जब हम किसी से कुछ छिपाते हैं तो कुछ ज़्यादा ही दिखा जाते हैं. ख़ैर, अगले दिन सालिक को वापिस ड्यूटी पर जाना था. उसे हंसी-ख़ुशी सब ने विदा कर दिया. ज़िंदगी आम चल पड़ी. शाजिया और ताहिरा आपस में चुहलबाज़ी कर रही थीं. अपने पहलगाम ट्रिप से बेहद उत्साहित हो ताहिरा अम्मी-अब्बू को भी ढेरों किस्से सुनाती रहीं. 'चार बार आईस्क्रीम कोन खाये और अब्बू के पैसे बचा लायी,' कहकर उसने अब्बू का सौ का नोट उन्हें दिखाया. अब्बू की दुनिया उनकी बेटी में समायी हुई थी. 'शैतान!' कह कर वे हंस दिये.

दो-चार दिनों में दहशत की संजीदगी थोड़ी हल्की पड़ गयी थी. मानो, एक बुरा ख़्वाब डरावना-सा आया था, जिसकी तासीर अब मिट गयी थी. दोबारा से नींद ने आंखों में बसर कर लिया था. पहले की तरह ही जीवन अपनी धुरी पर चल पड़ा था कि दस दिनों बाद फिर रात के भयावह सन्नाटे को चीरती वैसी ही सांकल की ठक-ठक दरवाज़े पर हुई. गुलबाबा और हसीना बानू के काटो तो ख़ून नहीं. हसीना बानू ने वहम के मारे ज़रूरत से ज़्यादा खाना बनाना ही बंद कर दिया था कि कहीं वे फिर न खाने आ जायें. बेटी और बहू एक ही कमरे में टी. वी. पर अपना पसंदीदा प्रोग्राम देख रही थीं भीतर. टी. वी. का शोर बर्फ़ीले पहाड़ों से उतरते दरिया की चीख़ती आवाज़ में गुम था. बर्फ़ीले पहाड़ों के पीछे सूरज के सरकते ही मानो ठंड से कांपते बदन, ज़मीं और आसमां भी थमकर शांत हो जाते हैं. सो, ऐसे ठहरे हुए सन्नाटे में, ठक-ठक की थाप...! गुल बाबा ने अपना लिहाफ़ फेंका और लपक लिये दरवाज़े की ओर दहशत से स्नायुवेग की अधिकता थी व हाथों में कंपन. शुबहा सही निकला. सामने वही दरिंदें थे.

छः फुट ऊंचा आदमी सलवार-कुर्ते के ऊपर बास्कट पहने हुए, हाथों से कंधे की ए.के.४७ संभाले, मैला-कुचैला साफ़ा बांधे हुए गुलबाबा को धकेलता हुआ भीतर आते ही बोला, 'कहां है तेरी जनानी? उसनू बोल खाण लई दस्तरखान लगाये.' उसके पीछे वही दोनों थे. बोले, 'बड़ी भूक्ख लग्गी है.' हसीना बानू झट से, सिर पर कपड़ा बांध चूल्हे की ओर दौड़ी भत्त बनाने को. और पिछले भीतरी चूल्हे की लपटों पर कड़म का बैंगन वाला साग जो बचा था गरम करने को रख दिया. खाना बनने में समय लगता देखकर वे भीतर की ओर चल पड़े. यह देख, गुलबाबा ने उन्हें रोकना चाहा तो उन्होंने गुलबाबा को ज़ोर का धक्का देकर पीछे धकेला. इस उठा-पटक की आवाज़ सुनकर ननद-भाभी ने पलटकर अपने दरवाज़े की ओर देखा तो उन लोगों को सामने देखकर उनकी चीख़ें निकल गयीं और वे एक-दूसरे से भय के मारे लिपट कर रोने लगीं. वे चिल्ला रही थीं, 'अम्मी! अब्बू!' उधर टी. वी. की आवाज़ में उनकी चीख़ें दूध में पानी-सी घुली जा रही थीं. वे सरकती हुई पीछे की ओर दीवार भेदकर उसमें समाने का यत्न करने लगीं कि तभी लार टपकाते, वहशी दरिंदें वापिस मुड़ आये. वे बाक़ी कमरों में भी जांच-पड़ताल करने गये कि वहां और कौन है? और उधर चूल्हे की आग उनकी उदराग्नि को मिटाने के यत्न में तत्पर थी. बेचारी हसीना बानू की आंखों से घबराहट, डर और दुःश्चिंता के कारण आंसू बहे जा रहे थे. हाथों से बर्तन छूट रहे थे.

वह ख़ुदा की बंदगी में कलमा पढ़े जा रही थी. 'ला-इला-ह-इल्लाह अस्तक-फ्रू-अल्लाह' (हे ख़ुदा मेरे गुनाह बख़्श).

वे तीनों अब अपनी नकाब हटा चुके थे. उन्हें समझ आ गया था कि यहां कोई ख़तरा नहीं है. गुलबाबा दस्तरखान

बिछा रहा था और सोच रहा था कि कैसे इन बदजातों की आंखें नोच ले, जो उसकी घर की इज़्ज़त पर उठी थीं. धिक्कार रहा था अपने नेताओं को. जो शुतुर्मुर्ग बने बैठे थे. जिन्हें आम जनता पर हो रहे जुल्म का इल्म होते हुए भी, चैन की नींद आ जाती थी. सी. आर. पी. फोर्स जगह-जगह तैनात थी. फिर भी बाहरी ताकतें घाटी में क्रियाशील थीं. ढेरों संगठन थे उग्रवादी जैसे, हि. मु., जे. के. एल. एफ, हुर्रियत नेता आदि जिन्होंने कश्मीर घाटी का चैन लूटा हुआ है. राष्ट्रीय-राईफ़ल्स के आने से कुछ फ़र्क पड़ेगा लोग सोचते थे. पर कहां है अमन...? उधर दोनों लड़कियों ने भीतर से कुंडी बंद कर ली थी लेकिन वे रो-रो कर बेहाल थीं. उनका इलाक़ा सुनसान था, बस यही ग़लत था. ख़ैर, खाना परोसा गया, उन्होंने खाया. डकार लेकर उठे और बंदूक की नोंक पर गुलबाबा को कहा, 'तुम बाहर खड़े पहरा दो. हमने चिलम के कश लेने हैं.' गुलबाबा ने सोचा कि ये पहले की तरह चले जायेंगे. सो, वो बाहर खड़ा हो गया. उन्होंने भीतर से कुंडी लगायी और हसीना बानू से शाज़िया और ताहिरा के कमरे की कुंडी खुलवायी. उन तीनों ने उन तीनों औरतों के हाथ-मुंह वहां रखे दुपट्टों से बांध दिये. और एक-एक को लेकर तीनों एक-एक लिहाफ़ में घुस गये. उधर गुलबाबा हर बात से बेख़बर अपने बाल नोचने लगा. अपनी छाती पर दोहत्थड़ मारने लगा. वह बुदबुदा रहा था, 'हे ख़ुदा मुझे मर्द क्यों बनाया? मुझमें इनसे मुक़ाबला करने की हिम्मत बख़्श! या-अल्लाह रहम कर!' वह दरवाज़ा खटखटाने लगा ज़ोर-ज़ोर से. भीतर तो कोई नहीं सुन रहा था. अलबत्ता, बाहर सड़क पर निकली गश्त की टुकड़ी ने कुछ सुना और आवाज़ की ओर राष्ट्रीय राईफ़ल्स के दस जवानों की टुकड़ी चुपचाप वहां आ पहुंची. आते ही कैप्टन ने पूछा, 'भीतर कौन है? क्या बात है? तुम डरे हुए हो और बाहर क्यों हो?' मानो, ख़ुदा ने गुलबाबा की फरियाद सुन ली थी. वे बोले, 'जी भीतर घर की औरतें सो रही हैं' और ... रो पड़े.

यह सुनते ही गुलबाबा के हाव-भाव से मामला संदिग्ध जानकर किसी तेज़ औज़ार से उन्होंने दरवाज़ा खोल लिया और बिना एक मिनट गंवाये दबे पांव वे बारी-बारी भीतर घुसे. सामने ही तीन ए.के.४७ राईफ़ल्स देखकर वे एक्शन में आ गये. पहले तीनों कब्ज़े में कीं फिर चौकन्ने हो इशारे से भीतर झांकने लगे. देखते हैं कि तीन लिहाफ़ बिना आवाज़ के डोल रहे हैं स्पीड में. मामला समझने में देर नहीं लगी और उसी क्षण उन तीनों लिहाफ़ों को गोलियों की बौछार से छलनी कर दिया. गेहूं के साथ घुन भी पिस गया. गुलबाबा पीछे खड़े सब देख रहे थे. उनकी सांसें मानो वहीं थम गयी. आंखें फाड़े वे जो मंजर देख रहे थे, अपने आशियाने के लुटने का... वह बयां होना मुश्किल है. वे वहीं निढाल हो ज़मीं पर गिर गये. जब जवानों को तसल्ली हो गयी कि काम हो गया है तो कुछेक ने आगे बढ़कर उनके लिहाफ़ नीचे की ओर सरकाये. उस एक पल के नज़ारे ने दुनिया के सारे रब्ब... भगवान.. वाहे गुरू को वहशी इंसानों की दरिंदगी पर शर्मिंदा कर दिया. गोलियों से सबके अंग-प्रत्यंग छितरे पड़े थे लहू के दरिया में.

वज्र प्रहार से तो अभेद्य चट्टानें भी टूटकर बिखर जाती हैं, फिर यह तो गुलबाबा का दिल था, जो इस भीषण आघात से क्षत-विक्षत हो विदीर्ण हो गया था. उनका दिल विद्रोह कर उठा. उन्होंने जवानों के जाते ही बकरा हलाल करने वाला बड़ा चाकू उठाया और भीतर जाकर उन तीनों दरिंदों के सिर एक झटके में उनके धड़ से अलग कर दिये और अट्टहास कर उठे. इस वक़्त वो एक सताया हुआ इंसान था ना कि मुसलमान. ख़ून से लथपथ तीनों मुंडों (सिरों) को हाथों में उठाये स्वयं भी ख़ून से भीगते हुए वे बस्ती के चौक की ओर भागे. चौराहे पर उन तीनों के मुंड फेंक कर वे ज़ोर-ज़ोर से अल्ला हो-अकबर, अल्ला-हो-अकबर पुकारने लगे. यह सुन बस्ती के सारे दरवाज़े और खिड़कियां फट्-फट् खुल गये... पौ फटते ही वहां की सुबह कराह रही थी क्योंकि घाटी पर छायी दहशती सिलेटी बदलियों ने धवल शिखरों को ढंक कर उनका अस्तित्व ही नकार दिया था.

मो. : ९४६४३३४११४ (भारत);
फ़ोन : २२५-७६७-७६७९ (अमेरिका)
ई-मेल : *vij.veena@gmail.com*

पाठकों/ग्राहकों से निवेदन

कृपया 'कथाबिंब' की सदस्यता राशि मनी ऑर्डर से भेजते समय फ़ॉर्म पर अपना नाम, पता, पिन कोड सहित अंग्रेज़ी में साफ़-साफ़ लिखें. मनीऑर्डर भेजने के बाद पोस्टकार्ड पर पूरे पते सहित इसकी सूचना अवश्य दें. आपकी सदस्यता अगले अंक से लागू होगी. पते में परिवर्तन की सूचना भेजते समय कृपया नये पते के साथ पुराने पते का उल्लेख करना न भूलें. **- संपादक**

लघुकथा

गोरैया

✍ डॉ. योगेंद्रनाथ शुक्ल

नये घर में आकर सभी लोग बहुत ख़ुश थे, सिवाय दादी के. बेचारी दादी क्या करती? उसने जीवन भर कुत्ते, गाय और परिंदों को रोटी, दाना-पानी दिया परंतु अब इस नये मकान में वह सब कहां संभव? न वहां गाय आती न कुत्ते और न परिंदे. खाना सामने आते ही वह अब भी गाय और कुत्ते की रोटी निकालना नहीं भूलती. उस रोटी को वह क़ाग़ज में लपेट कर काम वाली बाई को दे देती ताकि वह उसकी बस्ती में गाय और कुत्ते को खिला दे. इन दिनों वो सभी से कहती, 'पचास साल का मेरा क्रम टूट गया... अपना पैतृक घर कितना अच्छा था. यहां तो न जानवर आते हैं और न परिंदे! रोज़ सकोरे का पानी बदलती हूं, सकोरे के दाने वैसे के वैसे ही रखे रहते हैं... कैसी जगह आ गये हम?'

आज अचानक चीकू ने आवाज़ लगायी, 'दादी... दादी... जल्दी आइए. ओ दादी... कहां हो... यहां आकर देखिए.' दादी बाहर आयी, भाव विभोर हो गयी. चीकू की आवाज़ सुनकर पापा, मम्मी, चाचा, चाची भी दौड़कर आ गये थे. दादी की आंखों से आंसू झर-झर बह रहे थे.

... सभी देख रहे थे कि एक गोरैया सकोरे के ऊपर बैठ कर दाना चुग रही थी.

३९०, सुदामा नगर, अन्नपूर्णा रोड, इंदौर (म.प्र.).
मो. : ९९७७५४७०३०

मुक्तक

✍ शिव डोयले

दर्पण मुझसे बतियाने लगा है,
जीवन दर्शन समझाने लगा है.
आग का सफ़र क़ाग़ज की नाव में,
मेरा मन मुझे डराने लगा है.

--

उसके चेहरे पर ज़िंदगानी रहती है,
निर्मल मन में पवित्रवाणी रहती है.
सूरज भी आशीर्वाद देता है उसको,
वह जब तुलसी को पानी देती है.

--

मेरा तो बस इतना-सा फसाना है,
पत्तियों पर ठहर के रात बिताना है.
फूलों से ज़िंदगी की बात करती,
भोर में दस्तख़त छोड़कर जाना है.

कश्तियों से दूर न हो जाये किनारा,
दरिया और समंदर सा दिल तुम्हारा.
कहीं टूट न जायें प्यार की लहरें,
यही सोचकर मैंने कंकर नहीं मारा.

--

भूख में मज़दूर का खाना-पीना तो देख,
ग़रीबी में कैसे जीते हैं जीना तो देख.
फटे चीथड़ों में ज़िंदगी की मुश्किल फोड़ता,
तपता सूरज माथे पे और पसीना तो देख.

--

झूलेलाल कॉलोनी, हरीपुरा,
विदिशा- ४६४००१ (म. प्र.).
मो.: ९६८५४४४३५२

कहानी

धोबीपाट

सुशांत सुप्रिय

हरपाल अब बूढ़ा हो चला था. कुश्ती के खेल में पैंतालीस साल के आदमी को बूढ़ा ही कहा जायेगा. हालांकि उसकी देह पर ढलती उम्र का असर हुआ था, पर खंडहर बताते थे कि यह इमारत कभी बुलंद रही होगी. अपनी पूरी जवानी उसने कुश्ती के नाम कर दी. पटियाला से अंबाला तक, अमृतसर से जम्मू तक और रोहतक से सिरसा तक क्षेत्रीय स्तर की ऐसी कोई कुश्ती प्रतियोगिता नहीं थी जिसमें उसने विरोधियों को धूल नहीं चटायी. पूरे उत्तर भारत में उसने अपनी पहलवानी का डंका बजाया था. कुश्ती के इनामी दंगलों में वह कभी किसी पहलवान से नहीं हारा. अपने इलाक़े में वह 'छोटा गामा' के नाम से विख्यात था. लेकिन अब समय बदल गया था. उम्र बढ़ने के साथ-साथ उसकी मुश्किलें भी बढ़ गयी थीं. लोग उसकी युवावस्था के कारनामे भूल गये थे. बदक़िस्मती का आलम यह हो गया था कि अब दो जून खाना खाने के लिए भी उसके पास पैसे नहीं होते.

हरी मिर्च और खाली शीशी में पड़े बचे-खुचे अचार के मसाले के साथ हरपाल ने रोटी ख़त्म की. जब वह खा कर उठा तो उसे लगा जैसे वह अब भी भूखा है. पर घर में खाने-पीने का कोई सामान नहीं बचा था. दालें और सब्ज़ियां इतनी महंगी हो गयी थीं कि कभी-कभार ही आ पातीं. दूध और अंडों का भी यही हाल था. उसके बीवी-बच्चों ने भी जैसे-तैसे एकाध सूखी रोटी पानी के साथ निगल ली थी. खंडेलवाल किराने वाले ने तब तक और उधार देने से मना कर दिया था जब तक पिछला बक़ाया नहीं चुकाया जाता. यह सूचना उसकी पत्नी हरप्रीत ने दी जो कुछ सिलाई-कढ़ाई करके घर की गाड़ी चलाने की कोशिश करती थी.

हरपाल ने आईने में अपनी क़मीज़ का फटा हुआ कॉलर देखा. उसे अपनी जवानी के दिन याद आ गये. वे भी क्या दिन थे. गुरू बजरंगी के अखाड़े की मिट्टी में कुश्ती के दांव-पेंच सीख कर वह बड़ा हो गया था. और कुश्ती मुक़ाबलों के लिए पूरी तरह तैयार.

जवानी की दहलीज़ पर क़दम रख चुके हरपाल की गठी हुई देह में पशु-सरीखी ऊर्जा भरी हुई थी. रोज़ वह अखाड़े में दो हज़ार से ज़्यादा दंड पेलता था. जब वह दस बरस का था तो उसने अपने मज़दूर पिता से कुश्ती सीखने की बात की थी. पहले तो पिता ने उसकी बात अनसुनी कर दी थी. पर जब वह नहीं माना तो वे उसे गुरू बजरंगी के अखाड़े में ले आये. गुरू बजरंगी ने हरपाल की आंखों में कुश्ती में सफल होने की भूख देखी. उनकी अनुभवी आंखों ने ताड़ लिया कि यह पट्ठा इसी काम के लिए बना है. उन्होंने उसके प्रशिक्षण और खाने-पीने का पूरा ख़र्चा अपने ऊपर ले लिया. उनकी देख-रेख में हरपाल ने देखते-ही-देखते कुश्ती के दांव-पेंचों में महारत हासिल कर ली.

इलाक़े में समय-समय पर इनामी दंगल आयोजित किये जाते थे. इनाम के रूप में ट्रॉफ़ी और धन-राशि भी होती थी. हरपाल ने सभी क्षेत्रीय कुश्ती मुक़ाबलों में अपना झंडा गाड़ना शुरू कर दिया.

आईने में अपनी देह पर ढलती उम्र का प्रभाव देखते हुए हरपाल को तीस बरस पहले कुलवंत सिंह से हुआ उसका कुश्ती मुक़ाबला याद आया. यह उसका पहला बड़ा इनामी दंगल था. कुलवंता नामी पहलवान था. वह 'हरियाणा केसरी' का ख़िताब जीत चुका था. अपनी जवानी में वह बेहद ताक़तवर और फुर्तीला पहलवान था जो चुटकियों में विरोधी को पस्त कर देता था. 'कलाजंग' उसका प्रिय दांव था. वह अपने विरोधी को उसके पेट के बल कंधों पर उठा

लेता था और फिर उसे पीठ के बल पटक देता था. पर उम्र अब हरपाल के साथ थी. बीस साल का हरपाल चढ़ता हुआ सूरज था जबकि चालीस साल का कुलवंता ढलता हुआ सूरज.

मुक़ाबले के लिए अपार भीड़ जुटी थी. शुरू में ही हरपाल की चुस्ती-फुर्ती और उसके दांव-पेंचों ने कुलवंते को परेशान कर दिया. हरपाल की ऊर्जा और दांवों के सामने कुलवंता लड़खड़ाने लगा. आख़िर हरपाल ने कुलवंत के पैर उखाड़ दिये. मौक़ा देखकर उसने कुलवंते को दोनों हाथों से ऊपर उठा कर ज़ोर से ज़मीन पर पटक दिया. यूं भी 'धोबीपाट' हरपाल का पसंदीदा दांव था.

जीतने के बाद उसे पता चला कि कुलवंत सिंह के दायें टखने की हड्डी पटके जाने की वजह से टूट गयी थी. लेकिन मुक़ाबले के दौरान उसके मन में कुलवंते के प्रति कोई कड़वाहट या दुश्मनी का भाव नहीं आया था. उसके लिए यह महज़ एक खेल-मुक़ाबला था. उसका उद्देश्य महज़ जीतना था. दुश्मनी जैसे भाव तो कुलवंते के मन में भी नहीं आये होंगे, हालांकि हार कर चोट लगने के बाद वह रोया था. अख़बारों ने तब लिखा था कि यह ढलती उम्र और अनुभव के ख़िलाफ़ जवानी की चुस्ती-फुर्ती की जीत थी, लेकिन हरपाल ने अपनी जीत का श्रेय गुरू बजरंगी को और उनके अखाड़े के प्रशिक्षण को दिया था.

हरपाल की बीवी हरप्रीत भी अपने ज़माने में सुंदर रही होगी. उसने पति को आईने में चेहरा निहारते देखा तो उसे ख़ुश करने के लिए बोल पड़ी, 'अगर आपको ठीक से खाने के लिए रोटी-दाल-सब्ज़ी मिल जाये तो आप फिर से पहले जैसे दिखने लगोगे.'

झूठी तसल्ली सुनकर हरपाल मुस्करा दिया. लेकिन उसके मन में दबी इच्छा बाहर निकल आयी. बोला, 'काश, महीना भर रोज़ दो-तीन किलो दूध और आधा दर्ज़न अंडे मिल जाते, तो महीने बाद भिवानी में होने वाला कुश्ती मुक़ाबला तो मैं ही जीतता. जीतने वाले को अच्छी रक़म मिलेगी.'

बीवी उसे हतोत्साहित नहीं करना चाहती थी. पर इतना ज़रूर बोली, 'जीतने के चक्कर में चोट न लगा आना.'

हरपाल ने कोई जवाब नहीं दिया. यूं भी अब वह कम बोलता था. कभी-कभी उसके जोड़ों में दर्द होने लगता. वह

८ मार्च, १९६८,
शिक्षा : अमृतसर (पंजाब), व दिल्ली में.

: प्रकाशित पुस्तकें :

हत्यारे, हे राम, दलदल (तीन कथा - संग्रह);
अयोध्या से गुजरात तक, इस रूट की सभी लाइनें व्यस्त हैं (दो काव्य-संग्रह).

: सम्मान :

भाषा विभाग (पंजाब) तथा प्रकाशन विभाग (भारत सरकार) द्वारा रचनाएं पुरस्कृत. कमलेश्वर-कथाबिंब कहानी प्रतियोगिता (मुंबई) में लगातार दो वर्ष प्रथम पुरस्कार. स्टोरी-मिरर.कॉम कथा प्रतियोगिता, २०१६ में कहानी पुरस्कृत.

: अन्य :

कई कहानियां व कविताएं अंग्रेज़ी, उर्दू, पंजाबी, उड़िया, मराठी, असमिया, कन्नड़, तेलुगु व मलयालम आदि भाषाओं में अनूदित व प्रकाशित. कहानियां कुछ राज्यों के कक्षा सात व नौ के हिंदी पाठ्यक्रम में शामिल. कविताएं पुणे वि. वि. के बी. ए. (द्वितीय वर्ष) के पाठ्यक्रम में शामिल. कहानियों पर आगरा वि. वि., कुरुक्षेत्र वि. वि., पटियाला वि. वि., व गुरु नानक देव वि. वि, अमृतसर के हिंदी विभागों में शोधार्थियों द्वारा शोध-कार्य. अंग्रेज़ी व पंजाबी में भी लेखन व प्रकाशन. अंग्रेज़ी में काव्य-संग्रह 'इन गांधीज़ कंट्री' प्रकाशित. अनुवाद की पुस्तक विश्व की श्रेष्ठ कहानियां प्रकाशनाधीन.

जल्दी ही थक भी जाता था. उसे लगता जैसे अब उसमें पहले वाली बात नहीं रही. लेकिन भिवानी में होने वाले कुश्ती मुक़ाबले में देश भर के नामी पहलवान हिस्सा ले रहे थे. जीतने वाले को 'रुस्तम-ए-हिंद' के ख़िताब से नवाज़ा जाना था. विजेता को अच्छी धनराशि भी दी जानी थी. यह रुपया हरपाल को मिल जाता तो घर की गाड़ी संभल जाती. इसीलिए उसने इस मुक़ाबले में शामिल होने के लिए अपना

नाम दे दिया था.

आईना मेज़ पर रखकर हरपाल कुर्सी पर बैठ गया. पत्नी भीतर के कमरे में जा चुकी थी. बैठे-बैठे हरपाल की आंखों के सामने उसकी जवानी के दृश्य चल-चित्र की तरह चलने लगे. अचानक उसके ज़हन में एक पुराना दृश्य कौंधा. उसे लुधियाना के आलमगीर अखाड़े में हुए उस कुश्ती मुक़ाबले का फ़ाइनल याद आया जब उसने इलाक़े के नामी पहलवान अवतार सिंह को 'धोबीपाट' देकर चित कर दिया था. तब मुक़ाबला लड़ने से एक-दो घंटे पहले वह तीन-चार किलो दूध पी जाता था और दर्ज़न भर उबले अंडे खा जाता था. इसके बाद उसकी नसों में जैसे इस्पात बहने लगता. उसकी मांसपेशियां जैसे फ़ौलाद की बन जातीं. दर्शकों के शोर के बीच ही हरपाल विरोधी पहलवान को उठा कर पीठ के बल पटक देता.

अवतार सिंह को 'सांडीतोड़' और 'बगलडूब' दांवों में महारत हासिल थी. वह मौक़ा पाते ही विरोधी पहलवान का हाथ मरोड़ देता था और विरोधी के बग़ल के नीचे से आसानी से निकल जाता था. लेकिन हरपाल की चुस्ती-फुर्ती के आगे उसकी एक न चली. हरपाल ने अवतारे को भी कुछ मिनटों के दांव-पेंचों के बाद ही धूल चटा दी थी. उसी अवतारे को जिसे खेल-प्रेमियों ने 'शेर-ए-अंबाला' का ख़िताब दे रखा था. एक बार फिर कुश्ती-जगत में हरपाल के 'धोबीपाट' की धूम मच गयी थी.

भूख हरपाल को फिर से सताने लगी. उसने ज़ोर से कहा, 'काश, रोज़ दो-तीन किलो दूध और आधा दर्ज़न अंडे मिल जाते ...'

□

आख़िर भिवानी कुश्ती मुक़ाबले का दिन आ पहुंचा. दूध और अंडे हरपाल के लिए आकाश-कुसुम बने रहे. उधार मिलना बंद हो चुका था. रूखा-सूखा खा कर ही महीना कटा था. लेकिन हरपाल को अपने बरसों के कुश्ती के अनुभव पर भरोसा था. और फिर उसके साथ उसका सबसे मज़बूत हथियार 'धोबीपाट' जो था — उसने सोचा.

चलते समय पत्नी हरप्रीत ने कहा था, 'आप ही जीतोगे. ख़ुद पर भरोसा रखो.' लेकिन वह जानता था कि उसकी पत्नी मन-ही-मन आशंकित थी कि मुक़ाबले के दौरान कहीं उसे चोट न लग जाये. इसलिए उसने पत्नी से भी यही कहा, 'डर मत! धोबीपाट का साथ है तो किस बात की फ़िकर.'

□

इनामी दंगल शुरू हो गया. शुरू के कुछ पहलवानों को हराने में हरपाल को ज़्यादा दिक्कत नहीं हुई. उसके सामने वे सब अनाड़ी थे. उसने हर बार अपने विरोधी पहलवान को 'धोबीपाट' दांव से चित कर दिया. कुछ दिन बीत गये.

उधर दूसरे मुक़ाबलों में युवा पहलवान परमजीत सिंह ने धूम मचा रखी थी. उसकी चुस्ती-फुर्ती और उसके दांव-पेंचों के आगे कोई पहलवान नहीं टिक पा रहा था.

बाईस वर्षीय परमजीत सिंह सुडौल और बलिष्ठ देह का मालिक था. उसकी भुजाओं और कंधों में जैसे हाथी का बल था. पिछले एक-दो सालों में उसने सभी क्षेत्रीय कुश्ती मुक़ाबले जीत लिये थे.

अंत में फ़ाइनल मुक़ाबले का दिन भी आ पहुंचा. अपनी बढ़ती उम्र के बावजूद हरपाल अपने अनुभव और आत्म-बल की बदौलत सब को हरा कर यहां तक पहुंच गया था. ट्रॉफ़ी और धन-राशि उससे बस एक जीत दूर थे. लेकिन रास्ते में युवा पहलवान परमजीत सिंह एक बड़ी बाधा बन कर खड़ा था.

हरपाल भिवानी में जिस जान-पहचान वाले के यहां रुका था उसका घर कुश्ती मुक़ाबले के अखाड़े से पांच-छह मील दूर था. वह अपने रहने की जगह से अखाड़े तक रोज़ाना पैदल चलकर जाता था. आज भी फ़ाइनल मुक़ाबले से दो-तीन घंटे पहले वह घर से निकला. अभी थोड़ी ही दूर गया था कि किसी ने उसे आवाज़ दी, 'पहलवान जी, आप यहां?' उसके सामने एक अजनबी खड़ा था, जो लगभग श्रद्धा भाव से उसे देख रहा था. इससे पहले कि वह कुछ पूछता, उस व्यक्ति ने कहा, 'मैं आप का पुराना प्रशंसक हूं. मैंने आप की जवानी के बहुत से कुश्ती-मुक़ाबले देखे हैं. आप यहां कैसे?'

'भिवानी इनामी-दंगल में आया हूं. आज मेरा फ़ाइनल मुक़ाबला है.' हरपाल ने कहा.

'अरे वाह, पहलवान जी. यह मुक़ाबला भी आप ही जीतोगे. बस हिम्मत मत हारना. आजकल दूध-अंडे डट कर ले रहे हो न?'

प्रशंसक ने जैसे हरपाल की दुखती रग पर हाथ रख दिया था. हरपाल के मुंह से अपनी ग़रीबी का ज़िक्र निकल गया.

प्रशंसक बोला, 'मेरे होते हुए आप फ़िक्र न करो. मेरा घर यहीं पास में है. आप थोड़ी देर के लिए वहां चलो. मैं सब बंदोबस्त करता हूं.'

हरपाल किसी का अहसान नहीं लेना चाहता था. वह ना-नुकुर करने लगा. पर प्रशंसक नहीं माना. बोला, 'पहलवान जी, बिना दूध-अंडे लिये तो आप कभी मुक़ाबला नहीं लड़ते थे. आज कैसे लड़ोगे? आप मेरे घर चलो. ऊपर वाले की दया से अपनी दो-दो फैक्ट्रियां चल रही हैं. गाड़ी है. कोठी है. मैं ख़ुद आपको अखाड़े तक छोड़ने चलूंगा.'

हरपाल को प्रशंसक की बात माननी पड़ी. प्रशंसक ने अपने घर पर हरपाल के लिए दूध और अंडों का बंदोबस्त कर दिया. अपना पसंदीदा आहार लेकर हरपाल की देह और आत्मा, दोनों तृप्त हो गये. उसके भीतर ऊर्जा का संचार होने लगा. उसका तन-मन प्रसन्न हो गया. प्रशंसक उसे अपनी गाड़ी में बिठा कर अखाड़े पहुंचा. हरपाल उसका शुक्रिया अदा करने लगा तो वह बोला — 'अब तो मैं आपका फ़ाइनल मुक़ाबला देख कर ही जाऊंगा. पता नहीं आगे कभी मौक़ा मिले, न मिले.'

□

फ़ाइनल कुश्ती मुक़ाबला शुरू हुआ. पहले दोनों पहलवानों ने कुछ बुनियादी दांव लगाते हुए एक दूसरे की तैयारी को जांचा-परखा. हरपाल शुरू में ही समझ गया कि यह एक मुश्किल मुक़ाबला होगा. उसके हर दांव का तोड़ परमजीत के पास मौज़ूद था. जो ताक़त परमजीत को लगभग अजेय बना रही थी वह उसकी युवावस्था थी. बाईस साल के परमजीत की मांसपेशियां फड़क रही थीं. उसकी भुजाएं और कंधे अजस्र शक्ति का स्रोत थीं. साथ ही वह बेहद चालाक पहलवान था. लगता जैसे वह हरपाल के मन में छिपे उसके हर दांव को पहले ही जान जाता था.

लेकिन हरपाल को अपने बरसों के अनुभव पर पूरा भरोसा था. उसने अपनी ऊर्जा और अनुभव को उस आख़िरी दांव के लिए बचा कर रखना चाहा जो इस मुक़ाबले का पासा ही पलट दे. जैसे ही उसे मौक़ा मिला, उसने पूरी शक्ति के साथ परमजीत पर 'धोबीपाट' आज़मा दिया. अचानक हुए इस आघात से परमजीत लड़खड़ा गया. किंतु उसकी नसों में यौवन का गर्म लहू बह रहा था. शुरू में लड़खड़ाने के बाद वह संभल गया. उसने जवाबी दांव चल कर हरपाल की यह चाल नाकाम कर दी.

लघुकथा

खाली थाली

✍ कोमल वाधवानी 'प्रेरणा'

'सामने वाले मकान में रहने वाले रामेश्वरजी कितने दयालु हैं! उनकी बालकनी में हमारे लिए दाना-पानी हमेशा रखा रहता है और सबसे बढ़िया बात तो यह है कि हमारा घोंसला भी उनकी बालकनी के क़रीब है,' चिड़ा रामेश्वरजी की तारीफ़ करते नहीं थक रहा था, लेकिन पास ही बैठी चिड़िया का ध्यान उसकी बातों की ओर नहीं था.

'...और एक तुम हो जो दाना-पानी चुगने के लिए इतनी दूर-दूर भटकती रहती हो. कभी-कभी तो भूखी ही लौट आती हो. मेरी तो समझ में नहीं आता तुम सामने से दाना-पानी क्यों नहीं चुगतीं? आज भी तुम भूखी ही लौटी हो. जाओ, सामने की बालकनी से कुछ खाकर आओ,' चिड़े ने आग्रह किया.

चिड़िया उदास स्वर में बोली, 'मैं उस घर का दाना-पानी नहीं चुग सकती, जहां घर के बड़ों की भोजन की थाली खाली रहती हो.'

'शिवनंदन', ५९५ वैशाली नगर,
उज्जैन-४५६०१०
फोन : (०७३४)२५२०००१,
मो. : ९४०६८८६६११.

हरपाल के लिए यह उसका तुरुप का पत्ता था जो बेकार हो गया था. इस प्रयास में हरपाल ने जैसे अपनी पूरी संचित ऊर्जा और शक्ति गंवा दी. परमजीत ने जब जवाबी हमला किया तो हरपाल के जोड़ों में दर्द होने लगा. थकान उस पर हावी होने लगी. वह दांव-पेंचों में पिछड़ने लगा. उसके हाथ-पैरों की रही-सही ताकत जवाब देने लगी.

हरपाल को कमज़ोर पड़ता देखकर परमजीत शेर हो गया. मौक़ा देखकर वह हरपाल के पीछे गया. पहले वह अपने दोनों हाथ हरपाल की बग़लों के नीचे से आगे ले गया. फिर आगे से वह उन्हें हरपाल की गर्दन के पीछे ले गया और उसने हरपाल की गरदन को पीछे से दोनों हथेलियों से जकड़ लिया. यह सब इतनी तेज़ी से हुआ कि जब तक हरपाल संभलता, उसकी गर्दन परमजीत की गिरफ़्त में थी. हरपाल ने उस गिरफ़्त से छूटने की बहुत कोशिश

की लेकिन परमजीत उसकी गर्दन पर अपनी जकड़ मज़बूत करता चला गया. अपनी गर्दन पर पड़े इस दमघोंटू कैंची दांव से हरपाल को असह्य दर्द होने लगा. वह बेबस-सा छटपटाने लगा. उसकी आंख़ों के आगे अंधेरा-सा छाने लगा. उस नीम-अंधेरे में उसे ट्रॉफ़ी और धन-राशि उससे बहुत दूर जाते दिखे.

दर्द से छटपटाते हुए उसकी अधमुंदी आंखें अचानक दर्शकों की भीड़ में मौज़ूद अपने प्रशंसक पर पड़ीं. वह अब भी उसका उत्साह बढ़ा कर उसे जीतने के लिए प्रेरित कर रहा था. हरपाल को उस प्रशंसक की बात याद आयी — 'पहलवान जी, यह मुक़ाबला भी आप ही जीतोगे. बस हिम्मत मत हारना.'

वह उसके जैसे अपने प्रशंसकों को मायूस नहीं कर सकता था. उसका बरसों का अनुभव क्या आज व्यर्थ हो जायेगा?

अपनी सारी बची-खुची ऊर्जा और ताकत एकत्र करके हरपाल ने परमजीत की गिरफ़्त से छूटने का एक अंतिम महा-प्रयास किया. उसने पूरी ताकत से अपने मुंह से अपने फेफड़े में हवा भर कर अपनी छाती फुला ली और झटका दे कर वह परमजीत की गिरफ़्त से छूट गया. परमजीत ने ख़ुद को लगभग विजयी मान लिया था. वह हरपाल के जवाबी हमले के लिए तैयार नहीं था. बिना एक पल गंवाये हरपाल पलटा और उसने अपनी सारी शक्ति से एक बार फिर परमजीत पर अपना मनपसंद दांव 'धोबीपाट' चल दिया. इससे पहले कि परमजीत संभल पाता, हरपाल ने उसे दोनों हाथों से ऊपर उठाया और उसकी पीठ के बल उसे ज़ोर से अखाड़े की ज़मीन पर पटक दिया. पता नहीं यह दूध और अंडों का असर था या कुछ और, पर हरपाल निश्चित हार के मुहाने से वापस आ गया था और उसने करिश्मा कर दिखाया था. पटके जाने के बाद परमजीत दोबारा नहीं उठ पाया. हरपाल ने फ़ाइनल मुक़ाबला जीत लिया था.

दर्शकों में मौज़ूद हरपाल के प्रशंसकों ने उसे कंधों पर उठा लिया. उसने 'रुस्तम-ए-हिंद' का ख़िताब जीत लिया था. आयोजकों से ट्रॉफ़ी और धन-राशि लेते हुए हरपाल को लगा जैसे उसने परमजीत को नहीं, अपनी बदक़िस्मती को 'धोबीपाट' दे मारा था.

ए-५००१, गौड़ ग्रीन सिटी,
वैभव खंड, इंदिरापुरम,
गाज़ियाबाद-२०१०१४ (उ. प्र.)
मो: ८५१२०७००८६
ई-मेल : sushant1968@gmail.com

रचनाकारों से निवेदन

''कथाबिंब'' एक कथाप्रधान पत्रिका है, कहानी के अलावा लघुकथाएं, कविता, गीत, ग़ज़लों का भी हम स्वागत करते हैं. कृपया पत्रिका के स्वभाव और स्तर के अनुरूप ही अपनी श्रेष्ठ रचनाएं प्रकाशनार्थ भेजें. साथ में यह भी उल्लेख करें कि विचारार्थ भेजी गयी रचना निर्णय आने तक किसी अन्य पत्रिका में नहीं भेजी जायेगी.

१. कृपया केवल अपनी अप्रकाशित और मौलिक रचनाएं ही भेजें. अनूदित रचना के साथ मूल लेखक की अनुमति आवश्यक है.

२. रचनाएं काग़ज़ के एक ओर अच्छी हस्तलिपि में हों या टंकित हों. रचनाओं की प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें. वापसी के लिए स्व-पता लिखा, टिकट लगा लिफ़ाफा व एक पोस्ट कार्ड अवश्य साथ रखें, अन्यथा रचना संबंधी किसी भी प्रकार का पत्राचार करना संभव नहीं होगा. रचना के साथ कवरिंग लेटर का होना आवश्यक है. अन्यथा रचना पर विचार करना संभव नहीं होगा.

३. सामान्यत: प्रकाशनार्थ आयी कहानियों पर एक माह के भीतर निर्णय ले लिया जाता है. अन्य रचनाओं की स्वीकृति की अवधि दो से तीन माह हो सकती है. कहानियों के अलावा चयन की सुविधा के लिए एक बार में कृपया एक से अधिक रचनाएं (लघुकथा, कविता, गीत, ग़ज़ल आदि) भेजें.

४. आप ई-मेल से भी कहानियां भेज सकते हैं. कृपया लघुकथा, कविता, गीत, ग़ज़ल आदि ई-मेल से न भेजें. ई-मेल का पता है : kathabimb@gmail.com रचना की ''डॉक'' फ़ाइल के साथ ''पीडीएफ'' फ़ाइल भी भेजें. साथ में यह घोषणा भी होनी चाहिए कि विचारार्थ भेजी रचना निर्णय की सूचना प्राप्त होने तक किसी अन्य पत्रिका में नहीं भेजी जायेगी.

नवगीत

✍ राघवेंद्र तिवारी

अपने घर में,
रहती रही कबाड़ जोड़ती
समय हथेली से मरोड़ती.
अम्मा जिसके दर्शन में जीवन पलता था
चली गयी चिड़िया जैसे कि उड़ जाती है
मीलों पसरे हुए अधर में,
अपने घर में.
कमरों में इस बियावान के
कभी सपन थे ख़ानदान के
जिनके शीर्ष वचन सुन-सुन के
बने मंत्र हम आह्वान के,
अम्मा, जिसकी पलकों में बादल बसते थे
दूर खड़ी, गैया जैसे कि रंभाती है
अपनों से हो दूर डगर में,
अपने घर में.
अब खिड़की दरवाज़ों वाला
अन सुलझी आवाज़ों वाला
धैर्य कि जैसे यहां रहा चुप
लिये हृदय एक राजों वाला.
अम्मा, बिन घर सूना-सूना ताका करता
लुटी राजसत्ता को जैसे देख रहा हो
सैनिक कोई महासमर में,
अपने घर में.

सी-३०४, सी-विंग, ग्रीन पार्क
को.हॉ.सो., प्लॉट नं. २/३,
सेक्टर-३, घनसोली,
नवी मुंबई-४००७०१.
मो. ९४२४४८२८१२

कविता

होने न होने के पल

✍ श्यामसुंदर निगम

जी हां,
यही हैं मिस्टर 'एक्स'
बेचारे! अभी थे, अब नहीं हैं.
कितना छोटा है यह पल
हर पैमाईश से बाहर/पर
इसके बीच पसरा जीवन/कितना बड़ा है!
आश्चर्य से भी बड़ा
क्या था ऐसा जो नहीं था इनके पास...
उफ़ रिश्ते ही रिश्ते/रिश्तों पर चढ़े/लदे रिश्ते
हंसी, ख़ुशी, श्रद्धा, आस्था, आस-विश्वास
साकार था जीवन सारे सरोकार समेटे
हाथ पैर पसारे सब कुछ घेरे-अरोरे
मेरा-मेरा करता.
और, अब अभी-अभी
सब कुछ छूट गया
साथ रहे केवल 'मिट्टी' होने के पल
सब को जल्दी है इसे हटाने की
कोई नहीं बैठा डायरी में व्यवहार लिखने
कोई नहीं खड़ा द्वार पर हाथ जोड़े...
जो है,
वह न बोलता है/न हंसता-रोता है
न डेबिट-क्रेडिट कार्ड/न विज़िटिंग कार्ड
बस रवन्ना कटा/सारे खाते बंद.
होने से न होने के पल...

१४१५, 'पूर्णिमा', रतनलाल नगर,
कानपुर-२०८०२२
मो.: ९४१५५१७४६९.

कहानी

तुम्हारी अनुभूति

डॉ. निरुपमा राय

तीन दिनों से घर में गहमागहमी थी. नाते-रिश्तेदारों से घर भर गया था. कल ही तो प्रभा और सुधांशु की लाडली बिटिया का विवाह था. विभिन्न कामों में लगी हुई प्रभा को बार-बार महसूस हो रहा था कि उसके पति सुधांशु कभी दरवाज़े पर, तो कभी खिड़की पर खड़े मेन गेट की ओर बेसब्री से बार-बार निहारने लगते हैं. सारे मेहमान तो आ चुके हैं, आख़िर इन्हें किसकी प्रतीक्षा है? वो सोच रही थी.

'कोई विशिष्ट मेहमान आ रहा है क्या? आप बार-बार मेन गेट की ओर देख रहे हैं...?' उसने पूछा तो सुधांशु ने कहा,— 'हां, अति विशिष्ट अतिथि आ रहे हैं प्रभा... फ़ोन पर तो सूचना दी थी कि बारह बजे तक आ जायेंगे....पता नहीं अब तक क्यों नहीं आये?' 'कौन....? सब तो आ चुके हैं न?' प्रभा ने आश्चर्य से पूछा.

'लो, वो आ गये.' सहसा सुधांशु का चेहरा ख़ुशी से खिल उठा. वो तेज़ क़दमों से मेन गेट की ओर बढ़ गये. ऑटोरिक्शा से जो व्यक्ति उतरा, सुधांशु ने उसे गले से लगा लिया था. धीमे क़दमों से दोनों नज़दीक आने लगे. अचानक प्रभा चौंक पड़ी. ये तो, ...हां...वही है...वही आंखें...वही चेहरा...वही चाल...आदित्य यहां कैसे? और सुधांशु इसे कैसे जानते हैं? प्रभा संज्ञाशून्य-सी खड़ी अपलक दोनों को देखती जा रही थी. शरीर में मानो प्राण ही शेष न हों, सारे शब्द जैसे चुक से गये थे. केवल मन में प्रश्नों का बवंडर-सा चल रहा था. 'प्रभा...पहचाना इन्हें....?' सुधांशु ने पूछा तो वो भीतर तक थरथरा उठी.

'कैसी हो प्रभा?' आदित्य के कहे शब्द जैसे उसकी आत्मा में जाकर शोर मचाने लगे.

'ठीक हूं', सारी शक्ति बटोरकर उसने किसी तरह कहा. धड़कनों का तीव्र स्वर कनपटियों पर स्पष्ट सुनायी दे रहा था.

सुधांशु आदित्य की मेहमान नवाज़ी में जुट गये और वो सिरदर्द का बहाना बनाकर अपने कमरे में आकर लेट गयी. अतीत की सारी कड़ियां मानो पुनः जुड़ने लगीं, जिन्होंने प्रभा को बाईस वर्ष पीछे की दुनिया से फिर जोड़ दिया था.

प्रभा और सुधांशु के विवाह की आठवीं वर्षगांठ थी. दोनों एक-दूसरे में खोये बालकनी में बैठे संध्या की सुरमई बेला का आनंद ले रहे थे. पति के कंधे पर सिर टिकाकर बैठी प्रभा की दृष्टि अचानक सड़क के उस पार खड़े नीम के पेड़ पर ठहर गयी. अभी तुरंत इस पर बैठी एक चिड़िया ने दूर गगन में उड़ान भरी थी. उसने भीगी आंखों से पति को देखते हुए कहा, 'इस चिड़िया का नीड़ भी तो कहीं दूर....किसी पेड़ की ऊंची टहनी पर होगा....जहां उसकी राह निहारते नन्हें-नन्हें कई चूजे होंगे ना? और ज़रा उस नीम के पेड़ को देख़िए...सूखी टहनियों पर नयी-नयी पत्तियां उगने लगी हैं. जब नव कोंपलें फूटती हैं, तो प्रकृति का सौंदर्य कितना निखर आता है. कोमल-स्निग्ध पत्तों का स्पर्श कितना सुखद लगता होगा इस पेड़ को....और एक मैं हूं. ठूंठ-सी बेजान...किसी के कोमल...मीठे....और नन्हें स्पर्श को तरसती, मेरे जीवन में कभी नवपल्लव नहीं खिलेंगे...?'

लाख रोकने पर भी वो अपनी सिसकियां रोक नहीं पायी. संतानहीन होने की वेदना सहस्त्र धाराओं में फूट पड़ी थी.

सुधांशु का भी मन भीग उठा. स्नेह से पत्नी का माथा

सहलाते हुए उसने कहा, 'इस तरह मन छोटा मत करो प्रभा... हमें उम्मीद का दामन नहीं...' सुधांशु सांत्वना देता रहा और वो उसके सीने में सिर छिपाये जार-जार रोती रही. सुधांशु उससे इस बड़े सच को चाहे लाख छिपा ले, पर वो सुधांशु की पर्सनल फ़ाइल में शहर के सबसे बड़े स्त्री रोग विशेषज्ञ की रिपोर्ट देख चुकी थी.

दोनों पति-पत्नी अनजान बने हृदय को मथने वाली असहनीय पीड़ा का भार ढोते जा रहे थे. सुधांशु के ऑफ़िस चले जाने के बाद तो घर का खालीपन उसे काटने को दौड़ता और आंखों में एक चेहरा कौंध उठता...चेहरे पर घृणा और क्रोध की अनगिनत लकीरें होतीं....और तीर-से दंश देते कुछ शब्द....तुम कभी सुखी नहीं रहोगी....धीरे-धीरे ये शब्द कमरे में गूंजने लगते और प्रभा दोनों हाथों से कान बंद कर फूट-फूट कर रो पड़ती. हां, ये सिर्फ़ नियति नहीं है...किसी की बद्दुआ भी शामिल है इसमें. एक बच्चे के लिए तरसती प्रभा को किसी की आह लगी है....उसका अंतर्मन आर्तनाद कर उठता.

कई बार ऐसा होता कि मध्य रात्रि में आंखों में नींद नहीं, कई चित्र बनने और मिटने लगते. न चाहते हुए भी प्रभा विगत की गलियों में भागती चली जाती...वो और आदित्य...जैसे दो तन एक आत्मा. बचपन के साथी थे दोनों. प्रभा के पिता दीनदयाल पाठक गांव के धनाढ्य व्यक्ति थे. और आदित्य के पिता राम प्रकाश, पाठक जी के खेतों और कई एकड़ में विस्तृत आम के बग़ीचे की देखभाल करने वाले मुलाजिम थे.

बचपन की नोक-झोंक किशोरावस्था में पांव धरते-धरते पारस्परिक आकर्षण की डोर में बंधने लगी थी. समय अपनी गति से बीतता रहा. प्रभा पटना में हॉस्टल में रहकर बी. ए. की पढ़ाई कर रही थी और आदित्य कोलकाता में एम. बी. ए. की पढ़ाई कर रहा था. दीनदयाल जी आदित्य की प्रशंसा करते अघाते नहीं थे. आदित्य की प्रशंसा पिता के मुख से सुनकर प्रभा के मन में आनंद की लहरें नर्तन कर उठतीं. शायद पिताजी भी आदित्य को पसंद करते हैं...मेरा निर्णय उन्हें अवश्य मान्य होगा.

गर्मी की छुट्टियों में गांव आने पर दोनों का प्रेम परवान चढ़ता. साक्षी बनता वो विशाल आम का बग़ीचा. दोनों घंटों सबकी नज़रें बचाकर भविष्य के सपने बुना करते. अद्भुत अनुभूतियों से सराबोर दोनों उन्मुक्त गगन में उड़ते

डॉ. निरुपमा राय

३० अगस्त १९६९, पूर्णिया (बिहार)
एम. ए. (संस्कृत), नेट, पीएच. डी.

'कथाबिंब' की हितैषी तथा नियमित लेखिका.

पंछी की तरह प्रेमाकाश की ऊंचाइयां महसूस करने लगते. अधर मौन हो जाते....स्पर्श की भाषा मुखरित हो उठती....सारा स्पंदन, धड़कन और कंपन में बदलकर एक ऐसी धारा का रूप ले लेते, जो हृदयगत प्रेम का बांध तोड़ बाहर आने को आतुर हो उठती, सहसा सब कुछ थम जाता. 'हमें प्रतीक्षा करनी चाहिए....' आदित्य का गंभीर स्वर गूंजता और वो आनंद विभोर होकर उसके चौड़े कंधे पर सिर टिका देती. आदित्य की सौम्यता, उसकी साफ़गोई प्रभा को आकर्षण के मज़बूत बंधन में आबद्ध करती जा रही थी. उम्र के जिस मोड़ पर दोनों खड़े थे, वहां दुनिया की सबसे ख़ूबसूरत अनुभूति का रूप धरे 'प्रेम' खड़ा मुस्कुराता रहता है.

दोनों का निस्वार्थ प्रेम लता की तरह फलने-फूलने लगा था. समय पंख लगाये उड़ता रहा. घर में प्रभा के विवाह की तैयारियां चल रही थीं. बी. ए. की परीक्षा देकर वो गांव आयी तो आदित्य भी घर आया हुआ था. दोनों मिले तो प्रभा की पलकें भीग उठी थीं. 'घर में मेरे विवाह की बातचीत शुरू हो गयी है...तुम बाबूजी से कब मिलोगे?'

'कल सुबह...सब ठीक ही होगा प्रभा.'

'ईश्वर करे ऐसा ही हो.'

'जिस पल हम सप्तपदी के बंधन में बंधेंगे, वो पल कितना ख़ूबसूरत होगा ना.... और वो क्षण, जब हम माता-पिता बनने का गौरव पायेंगे...वो क्षण तो कल्पनातीत होगा...' आदित्य भावुक हो उठा था.

'कल्पनातीत तो तब होगा, जब मैं बिटिया की मां

बनूंगी.' प्रभा की आंखों में भी एक मीठा सपना कौंध उठा था.

'और उसका नाम होगा, अनुभूति...!'

'अनुभूति...? ठीक ही तो है....वो मेरे लिए तुम्हारी ही अनुभूति स्वरूप होगी ना....' प्रभा भावविभोर हो उठी थी.

पर दोनों का प्रेम प्रभा के परिजनों की आंखों में किरकिरी की तरह चुभा था. 'ये कभी नहीं हो सकता....' पिता का क्रोधित स्वर प्रभा को भीतर तक दहला गया था और परिवार की प्रतिष्ठा के प्रश्न ने प्रभा को विद्रोह करने से रोक दिया था. उसे परिस्थिति से समझौता करना ही पड़ा. उसका विवाह सुधांशु के साथ तय कर दिया गया.

सुधांशु का प्रेम पाकर वो पिछला सब भूलने लगी थी, पर खाली गोद की पीड़ा ने उसके पुराने घावों को जैसे फिर हरा कर दिया था.

आदित्य से हुई अपनी अंतिम भेंट को वो कभी भुला नहीं पायी थी. भीगी आंखों से उसे निर्निमेष देखते हुए आदित्य ने कहा था, 'प्रेम को संपूर्णता के साथ पा लेना बेहद दुर्लभ होता है प्रभा. सब कुछ ठीक होते हुए भी हमारा भौतिक परिवेश बीच में आ ही गया ना? तुमने विवाह के लिए हां कह के बहुत अच्छा किया...धनाढ्य...उच्चपदस्थ तुम्हारा पति तुम्हें वो सब कुछ दे सकता है, जो मैं नहीं दे पाता...'

पांव के अंगूठे से ज़मीन को कुरेदती, पसीने से भीगी हथेलियों को मींचती प्रभा मौन खड़ी थी, सहसा वो चीख़ पड़ा था, 'मुझे रुलाकर तुम कभी सुखी नहीं रहोगी...कभी नहीं....' लाल-लाल आंखों से उसे देखता वो भागता चला गया था.

अकेलेपन में आदित्य का वही चेहरा मानो कमरे की दीवारों पर उभरने लगता. वही क्रोध भरा चेहरा....वही शब्द .....तुम कभी सुखी नहीं रहोगी...और वो पसीने-पसीने हो जाती. सुधांशु पत्नी की पीड़ा से अनभिज्ञ नहीं थे, पर उसके मन में चलते भीषण बवंडर का पता उन्हें तब चला जब एक दिन प्रभा ने बिलखते हुए कहा था, 'आप क्यों बार-बार सांत्वना देकर मेरा और अपना मन दुखाते हैं? मैं जानती हूं, मैं कभी मां नहीं बन सकती. .....और ये सिर्फ़ भाग्य का दोष नहीं...किसी की आह भी लगी है मुझे....' फिर रोते-रोते सब कुछ बताती चली गयी. सुधांशु धैर्य से सुनते रहे थे. मन हल्का होने पर प्रभा ने पूछा था. 'मेरे विगत को जानकर आपको मुझसे घृणा हो गयी होगी ना?'

'ये तुम क्या कह रही हो प्रभा? तुम्हारी जैसी जीवनसंगिनी पाकर तो मेरा जीवन सफल हो गया है. प्रेम, समर्पण और माधुर्य के जो अनमोल पल तुमने मुझे दिये हैं, वो आजीवन मेरे हृदय में संचित रहेंगे. मेरा प्रेम तो सब कुछ जानकर और बढ़ गया है. पर तुम अपने मन से सारी दुविधाएं निकाल फेंको....बद्दुआ, आह जैसी किसी चीज़ का कोई अस्तित्व ही नहीं होता...हर काल में, प्रत्येक परिस्थिति में केवल 'प्रेम' का ही अस्तित्व होता है....'

समय अपनी गति से बीतता रहा. क़रीब आठ महीने बाद एक शाम सुधांशु घर आये तो प्रभा को जल्दी से तैयार होकर एक जगह चलने को कहा था. प्रभा पूछती रही, पर सुधांशु ने कुछ नहीं बताया. जब उनकी कार 'आनंद बाल निकेतन' के सामने रुकी तो उसने प्रश्नवाचक निग़ाहों से सुधांशु की ओर देखा. वो मुस्कुरा कर बोले, 'आज तुम्हारी गोद भर जायेगी. हम यहां से ख़ूबसूरत-सी एक बच्ची गोद ले रहे हैं.'

फिर सब कुछ बेहद सुखद घटता गया. बच्ची घर में क्या आयी, मानो बहार आ गयी. उसकी बालसुलभ मीठी क्रीड़ाओं में डूबी प्रभा दूसरा सब कुछ भूल गयी थी. बीस वर्ष कैसे बीत गये, पता ही नहीं चला. कल उसी बिटिया का विवाह है...

तभी दरवाज़े पर हुई तेज़ दस्तक ने प्रभा की सोच पर विराम लगा दिया. दरवाज़ा खोला तो सुधांशु सामने खड़े थे.

'तबियत तो ठीक है ना? मैं सब बताऊंगा, पर अभी तुरंत बाहर चलो, बैंडवाले को एडवान्स देना है....बिटिया की विदाई के बाद हम आराम से बात करेंगे.' सुधांशु ने उतावलेपन से कहा, तो वो भी अलमारी से रुपये निकालकर बाहर चली गयी.

धूमधाम से विवाह संपन्न हुआ. विदाई की मार्मिक बेला में जब बिटिया ने पिता के पास खड़े आदित्य को पैर छूकर प्रणाम किया तो उसके चेहरे पर आह्लाद की जो कौंध उभरी, प्रभा ने उसे साफ़ महसूस किया. बिटिया के सिर पर अपनी थरथराती हथेली रखते हुए आदित्य ने कहा, 'सदा सुखी रहो बेटी.'

दूसरी सुबह सुधांशु के लाख मनुहार पर भी आदित्य नहीं रुका. जाते समय उसने हाथ जोड़ते हुए प्रभा से कहा, 'हो सके तो मुझे माफ़ कर देना.' प्रभा कुछ नहीं कह सकी, अधर कांपकर रह गये. सुधांशु मेहमानों की विदाई और दूसरे

महत्वपूर्ण कामों में व्यस्त हो गये और प्रभा के क़दम अनायास उस कमरे की तरफ़ बढ़ गये, जहां आदित्य ठहरा था.

वो चुपचाप बेड पर बैठकर सोच में डूब गयी. अचानक उसकी दृष्टि सामने टेबल पर पेपरवेट के नीचे दबे कुछ पन्नों पर पड़ी. वो उत्सुकतावश उन्हें उठाकर पढ़ने लगी....'प्रभा ....! कहां से शुरू करूं...समझ नहीं पा रहा हूं, जानता हूं अपने द्वार पर अचानक मुझे देखकर तुम हतप्रभ होगी, पर सुधांशु की हार्दिक इच्छा का सम्मान करते हुए मैं इस विवाह में शामिल हुआ. मैं नहीं चाहता था कि कभी ये राज तुम्हारे सामने उजाकर हो कि अनुभूति....उस आख़िरी मुलाक़ात के क्षणों में मैंने जो कुछ भी तुमसे कहा था, वो क्षणिक आवेग था....और स्वाभाविक भी. मेरी जगह तुम होतीं तो तुम्हारी प्रतिक्रिया क्या इससे भिन्न होती? मैं कभी भी तुम्हारा अहित कैसे चाह सकता था...सोचा, अगर बिना सब कुछ बताये लौट गया, तो आत्मा पर एक बोझ लेकर जाऊंगा. कहने की हिम्मत नहीं जुटा पाया तो काग़ज़ और क़लम का सहारा लेना पड़ा.....तुम्हारे विवाह के बाद बाबूजी के साथ कोलकाता चला आया, एक छोटी-मोटी नौकरी कर ली. गांव का घर पड़ोसी हरिहर काका के हवाले कर दिया था.

भाग्य का मारा तो मैं हूं..... हर क़दम पर मिली ठोकरों से टूटा सा.....न प्रेयसी को जीवनसंगिनी बना सका और न जीवनसंगिनी को वो प्रेम, अधिकार और साथ दे पाया, जिसकी वो अधिकारिणी थी. पिता बार-बार वंशनाश की दुहाई देते थे.... आख़िरकार वर्षों बाद विवाह किया. पर मेरी ख़ुशी विधाता को मंजूर नहीं थी. विवाह के सालभर बाद ही बेटी को जन्म देकर पत्नी ने सदा के लिए आंखें मूंद लीं. बचपन में ही मातृस्नेह विहीन हो गया था....पिता भी मेरा दुःख सहन न कर सके....हृदयाघात के कारण चल बसे....पीड़ा के अगाध सागर में डुबकी लगाता मैं चार महीने की बच्ची को कलेजे से लगाये नियति के हाथों खिलौना बना हुआ था कि एक दिन मेरे द्वार पर दस्तक हुई.....और बहुत दिनों के बाद मुझे जीवन की धड़कन सुनायी दी. सुधांशु का परिचय पाकर और उन्हें अपने द्वार पर देखकर मैं आश्चर्य से भर उठा था. पता चला हरिहर काका से मेरा पता मालूम करके वो मुझसे मिलने आये हैं. मैं सकुचा रहा था, न जाने सुधांशु क्या कहेंगे? पर उन्होंने बेहद शांत स्वर में जो कुछ बताया, उसे सुनकर मैं सन्न रह गया. .....तुम अपनी मनोगत पीड़ा का कारण मेरी आह को मानती हो, ये जानकारी मुझे स्तब्ध कर गयी. ये सर्वथा मिथ्या है....मेरी अंतर्रात्मा से चीख़ उभरी थी....पर सुधांशु के शब्दों ने मेरे दग्ध हृदय पर मानो ठंडा फ़ाहा रख दिया था....

'आदित्य जी! मैं जानता हूं, प्रभा एक विकट मानसिक वेदना से जूझ रही है. और जब इन्सान अपनी उत्कट वेदना को सहन नहीं कर पाता....उसका ओर-छोर नहीं पाता....तो उसका मन इसके लिए एक ठोस कारण की तलाश कर, क्षणिक तृप्ति पाने का प्रयास करता है.....प्रभा भी इसी प्रयास में रात-दिन दुःखी और उदास रहने लगी है, मैं चाहता हूं, आप एक बार उससे मिल लें....कह दें कि उसकी सोच सर्वथा ग़लत है, भ्रामक है....तो शायद वो संभल सके. और उसका मौन रूदन सह नहीं पा रहा हूं...अपने बांझपन की हीनता के कारण वो अंदर-ही-अंदर टूट कर बिखर रही है.'

सुधांशु की पलकें आर्द्र हो उठी थीं....मैं आश्चर्य से उस इन्सान का चेहरा निहार रहा था. सुधांशु जैसा जीवनसाथी भाग्यवान को ही मिलता है प्रभा...'

जड़वत बैठी प्रभा का चेहरा आंसुओं से भीग गया था. आंचल से आंखें पोंछकर वो आगे पढ़ने लगी. आगे वो सच लिखा था....जिसे जानकर वो अवाक रह गयी. आदित्य ने आगे लिखा था....

'हम दोनों मौन बैठे गहरी सोच में डूबे थे....तभी कमरे का गहन सन्नाटा मेरी नन्हीं-सी बिटिया के रूदन से टूट गया.....साथ ही मेरे मन से भी मानो कालिमा की परतें हटने लगीं.....तत्क्षण निर्णय ले लिया....मैं कभी तुम्हारे समक्ष नहीं आऊंगा...पर अपने प्रति तुम्हारी मिथ्या सोच का प्रायश्चित ज़रूर करूंगा, अपनी बिटिया तुम्हारी गोद में डालकर.

पर तुम सहज ही उसे अपना लोगी, यह तो हो ही नहीं सकता था. हम दोनों तुम्हें अच्छी तरह समझते थे...दया, सहानुभूति, उपकार जैसे शब्द तुम्हें आजीवन पीड़ा न दें, इसलिए 'आनंद बाल निकेतन' की संचालिका के सहयोग से मैंने अपने जीवनभर की पूंजी तुम्हें अर्पण कर दी...मानो प्रायश्चित कर लिया.

फिर कहता हूं, भाग्यवानों को ही सुधांशु जैसा साथी मिलता है....उस जैसा दोस्त पाकर मैं भी धन्य हो गया,

प्रभा. सुधांशु पिछले बीस वर्षों से मेरे संपर्क में रहे हैं...उस दिन फूट-फूट कर रोया था, जब पता चला बिटिया का नाम तुमने अनुभूति रखा है. कुछ गांठें ऐसी भी होती हैं, जो जीवनपर्यंत नहीं खुलतीं.

अनुभूति को सुधांशु द्वारा भेजी गयी तस्वीरों में बड़ी होती देखता रहा.. सुधांशु के शब्दों में ही उसकी बालसुलभ लीलाएं... शरारतें... कुशाग्रता... भोलापन... हंसना-मुस्कुराना... रोना महसूस करता रहा.

सच, क़िस्मतवाली है तुम्हारी अनुभूति, जो उसे तुम्हारी जैसी मां और सुधांशु जैसे पिता मिले.

कई बार दुर्भाग्य और परिस्थितियां जीवन को इतना बेरंग और दुःखी बना देती हैं कि व्यक्ति अपने को एकदम असहाय समझने लगता है और तभी ईश्वर के अदृश्य हाथ उसकी मदद के लिए आगे बढ़ते हैं....और किसी को निमित्त बनाते हैं और सहसा परिस्थितियों में नये मोड़ उत्पन्न होने लगते हैं. हम भी उसी मोड़ पर खड़े हैं...इसलिए क्षणमात्र के लिए भी मन पर कोई बोझ मत रखना....

तुम दोनों ने अपनी बिटिया को सब कुछ दिया है...इसलिए लाख चाहने पर भी आशीष के रूप में साथ लाया उपहार स्वयं नहीं दे पाया....छोटे-छोटे सपनों के रूप में जो कुछ भी लाया था, वो मेज़ की निचली दराज़ में रखा है अगर तुम अपनी तरफ़ से अपनी अनुभूति को दे दोगी तो मुझे बहुत शांति महसूस होगी....

जब तक आख़िरी सांस नहीं ले लेता, तुम्हारे जीवन में अनगिनत, असीम ख़ुशियों के पदार्पण की कामना करता रहूंगा.....आत्मा से सदा तुम्हारा.....'

प्रभा के आंसू वेगवती नदी की धाराओं की तरह बहते जा रहे थे. पति और प्रेमी दोनों के अद्‌भुत अलौकिक स्नेह भार को वो संभाल नहीं पा रही थी. मेज़ की निचली दराज़ से उसने जेवरों का बड़ा-सा डब्बा निकालकर गोद में रख लिया था, जो उसके आसुंओं से भीगता जा रहा था.

'तुम यहां बैठी हो, मैं तुम्हें कहां-कहां नहीं ढूंढ़ आया....अरे! रो क्यों रही हो? और तुम्हारे हाथ में क्या है?' कमरे में घुसते ही सुधांशु ने कई सवाल कर डाले थे, प्रभा ने आदित्य का पत्र सुधांशु को देते हुए कहा, 'मैं सब कुछ जान चुकी हूं...पर तुमने मुझसे इतना बड़ा सच छिपाया कैसे? और क्यों?'

'कुछ चीज़ें वक़्त आने पर ही पता चलें...तो उसकी

महत्ता बढ़ जाती है प्रभा....इसीलिए मैंने अनुभूति की कसम देकर आदित्य को विवाह में शामिल होने के लिए मनाया था...बेटी का विवाह हो और पिता न हो!'

प्रभा ने बीच में ही उसकी बात काटकर कहा, 'तो लो, इस जेवर के डिब्बे पर लिखो...'प्यारी बेटी अनुभूति को उसके पापा की तरफ़ से आशीर्वाद के साथ....' और कल पग फेरे के लिए उसकी ससुराल जाते वक़्त साथ लिये जाना...यह आदित्य की भेंट है उसकी बेटी के लिए. उसकी अनुभूति के लिए.'

'नहीं, वो तुम्हारी अनुभूति है, प्रभा.' सुधांशु ने स्नेह सिक्त स्वर में कहा तो प्रभा ख़ुद को रोक नहीं पायी. सुधांशु के सीने में चेहरा छिपाकर सिसक पड़ी...

'नहीं....नहीं....वो सिर्फ़ तुम्हारी अनुभूति है...तुम्हारी अनुभूति.'

उसके आंसुओं से सुधांशु का सीना भीगता जा रहा था. और उसके कानों में आदित्य के कहे कुछ शब्द फिर गूंज उठे थे. ....'प्रेम तो एक विराट ब्रह्म है....जहां 'अहं' शून्य होता है ना, वहीं प्रेम पूर्ण होता है.....'

द्वारा, शंभुनाथ झा.
उर्सलाईन कान्वेंट रोड, रंगभूमि हाता,
पूर्णियां-८५४३०१ (बिहार)
मो.-९४३०९२७४१८/८००२७४७५३३

लघुकथा

टी. वी. के किसान

✍ चित्तरंजन गोप

हल-बैल खोलकर, बरामदे की चारपाई पर बैठा भूखला सुस्ता रहा था. कीचड़ से लथपथ... पसीने से नहाया हुआ. कृशकाय ... कृष्णवर्ण... कांतिहीन चेहरा.

उसकी बेटी ने आवाज़ दी, 'बापू, अंदर बैठिए न.' वह उठकर टी. वी. के सामने जाकर बैठा. तभी टी. वी. पर एक विज्ञापन आया. एक किसान अपनी पत्नी के साथ खेत में काम कर रहा था और कृषकों की एक योजना के बारे में बता रहा था. उनके दमकते चेहरे और ख़ूबसूरत पहनावे को देखकर भूखला मुस्कुरा उठा. उसकी बेटी ने पूछा, 'बापू, आप मुस्कुरा क्यों रहे हैं?'

'टी. वी. के किसानों को देखकर.' कहते हुए भूखला हंस पड़ा.

'क्यों, ऐसी क्या बात है?' बेटी ने पूछा.

'बेटी, ऐसी कौन-सी योजना है जो किसानों के चेहरे पर उस तरह की...?'

तभी उसकी पत्नी ने एक गिलास पानी और एक शीशी में थोड़ा तेल लाकर दिया. वह गटगटाकर पानी पी गया.

बेटी बोली - बापू, वे किसान नहीं है. फ़िल्म के हीरो हिरोइन हैं. उनका नाम...

भूखला हाथ में तेल की शीशी लिये उठ चुका था. वह तालाब की ओर चल दिया, नहाने के लिए.

✆ सेंट्रल पुल कॉलोनी (बेलचढ़ी), पो. थाना-निरसा (धनबाद), झारखंड-८२८२०५
मो. : ९९३१५४४३६६.

दो ग़ज़लें

✍ राजेंद्र निशेश

सहरा सहरा भटका कौन,
बुरे वक़्त सा अटका कौन !
जीने की उम्मीद लिये था,
तब सूली पर लटका कौन !
इस बस्ती में प्यार बहुत था,
फिर आंसू-सा टपका कौन !
पास नदी के वह रहता है,
बिलख रहा है प्यासा कौन !
तिनका-तिनका घर बनता है,
फिर आंधी में बिखरा कौन !
उम्मीदों के पंख लगाये
परिंदे-सा फिर भटका कौन !

दर्द की जब वो दवा देते हैं,
और भी दर्द बढ़ा देते हैं.
जब सवालों से घिरे होते वो,
जुल्म को आम बना देते हैं.
जुल्म को जुल्म जब हम कहते हैं,
घर हमारा वो जला देते हैं.
कैसे मुंसिफ़ हैं आप तो कहिए,
बेगुनाहों को सज़ा देते हैं.
बेजबां की हंसी पे क्यों हंसां,
साजिशें कर वो रुला देते हैं.

✆ २६९८, सेक्टर ४०-सी, चंडीगढ़-१६००३६
मो.: ९४१७१०८६३२

कहानी

एक सुहानी शाम... यूं भी बीती

मधु अरोड़ा

(**छोटी सी घोषणा...:** इस कहानी के पात्र काल्पनिक हैं... नाम और पात्र नये ईज़ाद नहीं किये जाते. इसे संयोग ही समझा जाये. किसी को अपमानित करने की मंशा नहीं है और अपने अनुभवों से ही कहानी में जान पड़ती है.)

जीनू का भी जवाब नहीं है. वे मेहमानों को वे ही पर्यटन स्थल दिखाना पसंद करते हैं जिनका उनके दिलों में 'औरा' रहता है. उन्हीं को दिखाने की उन्हें उत्सुकता होती है. लेकिन मेहमान हैं कि वे मुंबई जैसी दिखनेवाली जगहों को देखना पसंद करते हैं. चौड़ी-चौड़ी सड़कें देखकर चमत्कृत होते हैं.

वहां के खुले माहौल, छोटे-छोटे कपड़े पहनी औरतों को बार-बार देखकर अपनी आंखों को सेंकना चाहते हैं. जीनू बताते हैं कि नवंबर में ख़ूब ठंडी हवाएं चलती हैं और उसी तेज़ी से पेड़ों के पत्तों का झड़ना शुरू हो जाता है.

नवंबर में जब बर्फ़ गिरती है तो इन नंगे पेड़ों की डालों पर गिरती बर्फ़ मानो भरूच की रुई के फ़ाहों जैसी लगती है. महु को हमेशा ललचाते रहते हैं क्योंकि उसने कभी बर्फ़ गिरते हुए नहीं देखी है.

महु ने भारत में पतझड़ कहां देखा है. वह जिस शहर में रहती है वहां तो मानो ज़िंदगी दौड़ती है. न पतझड़ के पास समय है आने का और न लोगों के पास है पतझड़ देखने का. पतझड़ भी बेग़ानों–सा आता है और चला जाता है.

एयरपोर्ट पर जीनू सबको रिसीव करने आये हैं. सभी मित्र बहुत ख़ुश हुए हैं उनको देखकर. महु को देखकर बोले, 'आख़िर यहां के पतझड़ ने आपको यहां बुला ही लिया. अब मज़ा लीजिए यहां की हाड़तोड़ ठंडी हवाओं का. ज़रा बाहर निकलिए एयरपोर्ट से.'

'अभी तो हम आये हैं. अभी से डराने लगे यहां के मौसम से?' यह कहते हुए सब एयरपोर्ट से बाहर आ गये हैं. सामने एक बड़ी-सी कार खड़ी है जो जीनू ने बुक कर रखी है.

मौसम बिल्कुल साफ़ है और अचानक धूप निकल आयी है. जीनू हैरान हैं. महु ने कहा, 'देखा जीनूजी, हम अपना मौसम अपने साथ लेकर आये हैं. थोड़ी–सी धूप आप भी ले लीजिए.'

रास्ते में कार में बात करते हुए जीनू कहते हैं, 'यहां मौसम का कुछ पता नहीं चलता. आज आप लोग बेशक़ आराम कीजिए. लेकिन कल हम आप लोगों को घुमाने ले जायेंगे. जगह आप तय कर लीजिए.'

दूसरे दिन सुबह सब उठे हैं. दिनचर्या से निवृत्त हो गये हैं. भारत के हैं तो वॉशरूम और ब्रश तो करते ही हैं. बिना फ़्रेश हुए महु की बेड टी लेने की आदत है... वह जीनू बनाकर दे देते हैं. इतनी दूर से मानो वह अछूत हो. उसे यह व्यवहार अच्छा नहीं लगा है.

... यह तो शुरुआत है और गहरी सांस लेकर चाय पीने लगती है. जीनू ने सबको पित्ज़ा, ब्रेड और रेडीमेड सब्ज़ी का नाश्ता कराया है. महु ने फिर से सबके लिए चाय बनायी है.

चूंकि रात को तय हो चुका था. खिड़की से बाहर देखा तो शैलू ने बताया कि बाहर हल्की सी बारिश हो रही है और धूप भी खिली है. आपस में यह तय किया गया है कि यदि ज़्यादा ख़र्च होता है तो उसे शेअर कर लिया जायेगा.

दिनभर के लिए कार बुक कर ली गयी है. यहां मौसम कितना भी साफ़ हो पर बारिश चेरापूंजी के समान बारहों महीने होती है. चाहे दिन में हो या रात में हो. फ़िलहाल रिमझिम बारिश हो रही है. सबने अपने-अपने छाते ले लिये हैं. महु को छाता लेना सबसे ख़राब लगता है.

बंदा अपना वज़न उठाये, कपड़ों का वज़न उठाये और फिर यह मुई छतरी. इतने में कार के ड्राइवर का फ़ोन आता है और टोनू कहते हैं, 'कमिंग.' यहां के कार ड्राइवर समय के पूरे पाबंद होते हैं. ग्यारह तो ग्यारह.

सब कार में बैठने लगे हैं कि महु उतरकर अपने कमरे की ओर भागी है. इतने में रिया की आवाज़ आती है, 'महु कहां चली गयी. इनको यहां के क़ायदे पता नहीं हैं. कार का मीटर शुरू हो चुका है.' पांच मिनट में महु अपने पर्स में चॉकलेट का पैकेट ठूंसती हुई आ जाती है.

रिया का भी जवाब नहीं है... घूमने जाने के लिए ब्यूटी पार्लर जाने की क्या ज़रूरत है. पैसेवाली हैं...स्टीरियाइड की टेब्लेट खाकर चेहरे पर खिंचाव और विटामिन-ई के कैप्सूल आंख़ों के नीचे लगाकर और खाकर अस्थायी युवा तो दिखा जा सकता है.

महु उन्हें मेकअप विहीन और गंदा–सा गाउन पहने रात को जीनू के कमरे में देखकर हैरान और नि:शब्द रह गयी थी. पलकों तक ने झपकने से मना कर दिया था. टिपिकल नीची श्रेणी की क्रिश्चियन लग रही थीं.

रात को होटल के कमरे में सोते समय बेहूदा सवाल... आप रात को ब्रश नहीं करतीं? और शरीर पर क्रीम नहीं लगातीं?

शर्म तो उन्हें छूकर भी नहीं गयी है... बेशर्मी का आलम तो यह है कि वे गाउन में अल्लसुबह जीनू के कमरे में घुस गयी हैं... उस समय महु मॉर्निंग वॉक करके आ रही थी.

'वर्षा, जब कृषि सुखानी और तुम्हारी भी चुप ...; हमारी भी चुप... तुम्हारी भी जय-जय... हमारी भी जय-जय, महु इतना अच्छा एक्सप्रेशन दे सकती है, उसे पता नहीं था. इस 'तो' में ज़िंदगी का राज़ छुपा है और वह ख़ूब हंसी है.

यह व्यंग्यात्मक हंसी है. महु...महु है...उसे किसी ने पहचाना ही नहीं है... क्या उसे पहचानना इतना आसान है...? समझना तो दूर की बात है.

: कृतियां :

'बातें' तेजेंद्र शर्मा के साक्षात्कार, 'मन के कोने से' (साक्षात्कार); 'एक सच यह भी' पुरुष-विमर्श की कहानिया; ... और दिन सार्थक हुआ' (कहानी-संग्रह), 'तितलियों को उड़ते देखा है..?' (कविता-संग्रह); हिंदी चेतना, वागर्थ, वर्तमान साहित्य, परिकथा, कथाबिंब, पाखी, हरिगंधा, कथा समय व लमही, हिमप्रस्थ, इंद्रप्रस्थ, हंस पत्रिकाओं में कहानियां प्रकाशित; जन संदेश, नवभारत टाइम्स व जनसत्ता, नई दुनिया समाचारपत्रों में समसामयिक लेख प्रकाशित. उपन्यास.. 'ज़िंदगी दो चार क़दम' प्रकाशनाधीन.

: अन्य:

आकाशवाणी से प्रसारित और रेडियो पर कई परिचर्चाओं में हिस्सेदारी. हाल ही में विविध भारती, मुंबई में दो कहानियों की रिकॉर्डिंग व प्रसारण. मंचन से भी जुड़ी. जन संपर्क में रुचि.

: सम्मान :

ओहायो, अमेरिका से निकलनेवाली पत्रिका 'क्षितिज' द्वारा गणेश शंकर विद्यार्थी सम्मान. 'रिश्तों की भुरभुरी ज़मीन' कहानी को उत्तम कहानी के तहत 'कथाबिंब' पत्रिका द्वारा कमलेश्वर स्मृति कथा पुरस्कार-२०१२

: संप्रति :

स्वतंत्र लेखन.

उसका चेहरा स्मित मुस्कान से भर गया है. यह सोचते ही उसके चेहरे पर एक कोमलता आती है और वह जीनू को व पति को अपनी ज़िंदगी से नहीं जाने देगी... कभी अच्छे दोस्त और अच्छे पति को भला कोई हाथ से जाने देता है?

वह अपने पति की दौलत व प्रॉपर्टी की वारिस है और बच्चे उत्तराधिकारी हैं... मुंबई भारत का सबसे महंगा और पॉश शहर है और देह व्यापार का हब है..

कौन कब किसको कितने में बेच देता है, पता ही

नहीं चलता है और यहां पांच हज़ार में लड़कियों को बिकते देखा है. यहां देह व्यापार में रेट है... सौ रुपये से लेकर ५० हज़ार तक...

वह एक पल के लिए नि:शब्द हो जाती है. कभी जीनू और रिया आयें तो वह मुंबई की उन गलियों में ले जायेगी...और वे दोनों ही क्यों? कोई भी पॉज़िटिव सोच का बंदा आये.

कई लोग पानी के बजाय जूस पीना पसंद करते हैं क्योंकि दोनों के दाम एक ही हैं. अब जितना जूस पियेंगे, उतनी ही बार वॉशरूम ढूंढेंगे. सर्दी का मौसम जो है. सो चॉकलेट ही ठीक है. प्यास लगने पर यही चुभला लेगी.

कार ड्राइवर हिंदी गाना गा रहा है. महु को आश्चर्य हुआ. पूछने पर पता चला है कि वह गायक है. रात को ऑर्केस्ट्रा में गाता है और दिन में कार चलाता है. महु आंख़ें फाड़कर उस ड्राइवर को देखती है और सोचती है, मुंबई में शायद ही ऐसा देखने को मिले.

ऑर्केस्ट्रा में गानेवाला ड्राइवरी करे! मतलब ही नहीं है. जीनू और रिया नीचे उतर गये हैं... बस, यूंही बातें करते-करते गंतव्य पर आ गये हैं. महु ने चारों ओर मुड़-मुड़कर देखा कि इस एरिया की क्या ख़ासियत है. कुछ पतली गलियां दिखायी दीं.

गलियां देखकर महु को मुंबई का कालबादेवी इलाक़ा याद आ गया है. वहां की पतली गलियों का तो जवाब ही नहीं. वह मारवाड़ी इलाक़ा और यह पूरा पंजाबी इलाक़ा. यहां ख़ूब अच्छी बरसात हो रही है. हवा भी ख़ासी चल रही है.

उसने पतला कुर्ता और लैगिंग पहन रखी है. 'ठंडी हवा...; गाती हवा... आ रे ज़रा झूमके...' और वह ख़ूब झूम-झूमकर गाने लगती है.

जीनू एक मिनट को उसकी ओर देखते हैं और हल्की-सी प्यारी-सी मुस्कराहट से देखकर मानो कहते हैं... 'मानोगी नहीं? क्यों मेरी जान जलाती हो मेरी जानू!!!' 'दिल मिले... दिल खिले और जीने को क्या' चाहिए...

वह एक मिनट भूले नहीं भूलता... वह एक मिनट चाहिए, उन दोनों को. देखा जीनूजी... कितना बदल गया इंसान... महु न बदली. उसने अपने सिर को ज़ोर से झटका है. छतरियां उलटी हो रही हैं.

ऐसे मौसम से बचने का एक ही तरीक़ा है कि किसी रेस्तरां में भोजन कर लिया जाये. आस-पास देखा तो एक रेस्तरां दिखा है. सब लपककर उसी रेस्तरां में घुस गये हैं. रेस्तरां के दरवाज़े पर रखी बाल्टी में सबने अपनी छतरियां रख दी हैं.

रिया के पास लंबी डंडीवाला छाता है. वे उसको लेकर अंदर आ गयीं. मुंबई में ये छाते फुटपाथ पर झोपड़पट्टी वाले लड़के बेचते फिरते हैं और मारे-मारे फिरते हैं. कोई नहीं ख़रीदता.

उससे महंगी फ़ोल्डिंग चार छतरियां महु के पास हैं. ये दिल... ये छतरियां, ये ब्रश, ये टूथपेस्ट किसको दे? एक मायूसी उसके चेहरे पर छा जाती है. काश....!!

उस छाते को जब वे अपनी कुर्सी के पास रखने लगीं तो वेटर ने ऐसा करने से मना किया है. उनके यह कहने पर कि यह छाता बहुत महंगा है. इसे वे अपने पास ही रखेंगी. वेटर तो वेटर ठहरा.

वह भी अड़ गया. उसने कहा, 'गीले छाते से ज़मीन गीली हो जायेगी. आपको पता है कि ये फ़्लोर लकड़ी के हैं. ऐसे ही सब ग्राहक गीली छतरी रखेंगे तो गीलापन पाकर लकड़ी गलकर टूट न जायेगी? पानी दो फ़ुट नीचे ही है. समुद्र हरहराकर ऊपर आ जायेगा.'

जीनू ने रिया और वेटर का अड़ियल रुख़ देखकर छाता अपने हाथ में ले लिया है और कोने में रखे गमले में रख दिया है और वेटर का कंधा थपथपाते हुए शांत रहने के लिए कहा है. वेटर चला गया है.

महु ने नोट किया है कि यदि रिया की बात न मानी जाये तो वे बहुत ज़ल्दी नाराज़ हो जाती हैं. वेटर की क्या मज़बूरी है कि वह उनकी बात माने. थोड़ी देर में दूसरा वेटर आ गया है ऑर्डर लेने.

खाने का ऑर्डर देने का मोर्चा जीनू ने संभाल लिया है. रिया ने जूस निकालने की मशीन को देखते हुए कहा, 'कितनी गंदी है मशीन. इस मशीन का निकला जूस पियेंगे?'

जीनू ने उन्हें समझाते हुए कहा, 'जब जूस निकाला जाता है तो फलों के रेशे तो दिखेंगे न. आपको साफ़ जूस पिलाया जायेगा. परेशान मत होइए. इस शहर में सफ़ाई का कितना ख़्याल रखा जाता है, आप जानती हैं और फिर भी ऐसी बातें करती हैं.'

अबकी रिया चुप हो गयी हैं. वेटर चार गिलास जूस रख गया है. खाने का ऑर्डर दे दिया गया है. सभी अपने

अपने गिलास खाली करने लगे हैं. सबसे पहले जूस रियाजी ने ही पिया है.

धीरे-धीरे खाने की प्लेट्स मेज़ पर आने लगी हैं. रियाजी सबकी प्लेट से ले-लेकर खा रही हैं और कहती हैं कि हम तो सिर्फ़ दाल-चावल खाते हैं... शौक़िया तौर पर जीनू के साथ चिकन, फ़िश खाती हैं.

'मुफ़्त का चंदन... घिस मेरे नंदन.' महु बाहर अक़्सर हल्के स्नैक्स खाना पसंद करती है. क्या पता ये रेस्तरां वाले रात की सब्ज़ी सुबह और सुबह की सब्ज़ी दिनभर ओवन में ग़र्म कर-करके सर्व करते रहते होंगे. फूड पॉइज़निंग हो गयी तो लेने के देने पड़ जायेंगे. जीनू यह दावा करते हैं कि इस शहर में हमेशा ताज़ा खाना मिलता है.

महु ने कोई ख़तरा न लेते हुए अपने लिए आलू की टिक्की मंगवा ली है. उसने यहां किसी हलवाई को समोसे या वडे तलते नहीं देखा है. कम से कम उसने तो नहीं देखा.

देखा, वेटर पेटिस को ओवन में ग़र्म करके ले आया है. खाना स्वादिष्ट है. सभी मज़े से खाना इंजॉय कर रहे हैं. इतने में टोनू का मोबाइल घनघनाया है. स्क्रीन को देखकर मोबाईल अटैंड करने सीट से उठकर बाहर चले गये. खाना क़रीब–क़रीब पूरा होने को है.

टोनू और चावल की प्लेट एक साथ आ गये हैं. टोनू की आवाज़ सुनाई दी, 'जल्दी से खाना ख़त्म कीजिए. बारिश कम हो गयी है. कुछ शॉपिंग करना है तो की जा सकती है.'

महु से भी चावल लेने के लिए कहा गया, पर उसने अपनी प्लेट पर उल्टा हाथ रखकर मना कर दिया. महु को चावल खाने के बाद कोई सोने से नहीं रोक सकता.

उसे याद आया कि एक बार अपने ऑफ़िस में चावल खाकर कुर्सी पर ही ग़हरी नींद में सो गयी थी. उसके बॉस को कुछ पेपर चाहिए थे और वे महु को नींद से नहीं जगा पाये थे.

उसकी टेबल पर स्लिप लिखकर चले गये जिस पर लिखा था कि जब आपकी नींद खुले तो ये पेपर्स लेकर ज़रा केबिन में आ जाइएगा.

महु को शर्मिंदगी महसूस हुई थी और बॉस के पास जाकर माफ़ी मांगी थी जिस पर वे हंस पड़े थे और बोले थे, 'आपने नींद में कहा था कि ऑफ़िस में भी चैन से सोने नहीं देते. चले आते हैं, पेपर मांगने.

...सच कहूं तो आपकी ग़हरी नींद से जलन हुई. मुझे तो घर में भी इतनी अच्छी नींद नहीं आती और आप ऑफ़िस के लंच टाइम के आधा घंटे में इतनी ग़हरी नींद सोयीं? हा..हा..हा.'

'सर, आज चावल खा लिये थे. चावल खाने के बाद मैं ऐसे ही सो जाती हूं. पर अब टिफ़िन में चावल नहीं लाऊंगी.' यह सोचकर ही महु के चेहरे पर मुस्कहराहट तिर गयी.

सब पेट पूजा करके रेस्तरां के बाहर निकले हैं. चारों ओर कैसेट बज रहे हैं. हिंदी गानों की बहार. सड़क के दोनों ओर दूकानें ही दूकानें. जीनू सबको एक पतली गली से लेकर जाते हुए तारीफ़ के पुल बांध रहे हैं.

महु और शैलू को शॉपिंग करने के लिए कहा गया. महु ने कुछ सलवार सूट्स देखे, पर भाव दोगुना ज़्यादा. उसने तय कर लिया कि वह मुंबई से ही ख़रीदेगी.

सबने पूरे बाज़ार का एक चक्कर लगा लिया पर ख़रीदने लायक कुछ लगा नहीं. घड़ी देखी तो शाम के चार बजने को हैं.

मौसम का कुछ भरोसा नहीं कि कब अपना मूड बिगाड़ ले. इसलिए तय किया कि समय रहते घर पहुंचा जाये. सभी कार के पास पहुंचे और ड्राइवर ने कहा, 'आपका ही इंतज़ार है.' गायक होने की वजह से वह हर बात सुर में ही बोलता था.

सब कार में एक बार फिर समा गये हैं. रिया, महु और शैलू पीछे की सीट पर और जीनू आगे की सीट पर ड्राइवर के साथ बैठ गये हैं.

कार चल पड़ी है. महु ने सबको चॉकलेट दी. रिया का मूड चॉकलेट खाने के बाद ठीक हो गया है. वे अब अपने घर की बातें बताने लगी हैं. जब वे अच्छे मूड में होती हैं तो अपनी बाई के क़िस्से ख़ूब मज़े से सुनाती हैं.

उन्हें यह बात कहते समय बहुत गर्व होता है कि वे बचपन में चमारों के बच्चों के साथ ख़ूब खेली थीं. महु ने अपनी आंखों को ज़बर्दस्ती खोलकर रखा है. ख़ाना पेट में जाते ही उसकी आंखें बोझिल हो जाती हैं.

रिया ने महु को जगाते हुए कहा है, 'सुनिए तो सही. हमारी नौकरानी साबी को चुराने की आदत है. इतनी सफ़ाई से रुपये उड़ाती है कि आप देखती रह जायें. हमने तो सज़ा के तौर पर अपनी नक़दी और ज़ेवर उसके ही हवाले कर

दिये हैं.

...वही हमें पैसे देती है, जब हम मांगते हैं और वही ज़ेवर निकालकर देती है, जब हमें कहीं बाहर पार्टी में जाना होता है. शैलू हंसते हुए कहती हैं, 'यह आपने ठीक किया है. चोर के हवाले अपना ख़ज़ाना ही कर दिया. अब वह चोरी नहीं करेगी.'

रिया को लगता है कि उन्होंने बहुत समझदारी का काम किया है पर अगर साबी सब कुछ लेकर एक दिन भाग जाये तो ये क्या कर लेंगी. चोर चोरी से तो जाये, हेराफेरी से न जाये. बस, यूंही हल्की–फुल्की बातें हो रही थीं. आसमान भी खुल गया है, बारिश भी थम गयी है.

अचानक कार का चलना रुक गया है. सिगनल लाल है और रास्तों के बीच एक बोर्ड लगा है, कारों का कारवां थम गया है. जीनू और रिया नीचे उतरे. पता चला कि दो कारें एक-दूसरे से टकरा गयी हैं. रास्ते पर पुलिस ही पुलिस.

दोनों कारों की मालकिन कार के बाहर खड़ी थीं. पुलिस दोनों कारों के अलग-अलग तरह से फ़ोटो ले रही है. उत्सुकता में महु भी कार से बाहर निकल आयी है. दोनों कारों की मलिका-ए-आज़म अपनी-अपनी कार के बाहर खड़ी हैं और दोनों के हाव-भाव अलग हैं.

पुलिस दोनों से कार के लाइसेंस मांग रही है. महिला के पास शायद लाइसेंस नहीं है. उसने जो कहा, उससे महु इतना समझ पायी है कि वह घर जाकर लाइसेंस पुलिस को सौंप देगी.

जीनू अपने मेहमानों को बता रहे हैं कि यहां के नियम इतने सख़्त हैं कि जब तक मामला सुलट नहीं जाता, ट्रैफ़िक ऐसे ही रुका रहेगा. महु के मुंह से निकल जाता है, 'हमारी मुंबई में इतने टंटे नहीं होते.'

... वहां पुलिस को कुछ रुपये दे देते हैं फिर वह बीच में नहीं पड़ती. कारवालों की मर्जी है कि वे पुलिस केस बनाना चाहते हैं या नहीं. कई बार तो दोनों पार्टियां आपस में ही समझौता कर लेती हैं और जिसकी कार का नुक़सान हुआ है, उसकी भरपाई कर दी जाती है.

जीनू को इस शहर पर बड़ा ग़ुमान है. वे यहां के हर तरह के नियमों से इतने प्रभावित हैं कि सहज ज़िंदगी जीना भूल से गये हैं.

वे महु की बात पर ध्यान नहीं देते और रिया से कहते हैं, 'ये लोग मुंबई से आये हैं. यहां के नियमों से वाकिफ़ नहीं हैं. चलिए हम ज़रा जाकर देखते हैं कि माजरा क्या है. ग़लती किसकी है.'

इस पर महु होंठ सिकोड़कर रह गयी है और वे दोनों दुर्घटनाग्रस्त कारों के पास चले गये हैं. अब शैलू और महु अकेले रह गये हैं.

दोनों ने चारों ओर नज़र दौड़ायी है. रुकी हुई कारों के मालिक अब अपनी–अपनी कारों से बाहर निकलने लगे हैं. सभी को घर जाने की देरी हो रही होगी.

सभी की पेशानी पर बल पड़े हुए हैं. अपने देश के नियमों से बंधे इन लोगों पर महु को अत्यंत दया आ रही है.

यहां के नियमों के अनुसार जब तक दुर्घटनावाली कारों का कुछ फ़ैसला नहीं हो जाता है, कारें अपनी जगह से हिल नहीं सकती हैं. दो लोगों की ग़लती का ख़ामियाजा सबको भुगतना पड़ रहा है.

थोड़ी देर में रिया और जीनू वहां से वापिस आ गये हैं. महु ने अपने पर्स से चॉकलेट निकालकर सबको देते हुए पूछा है, 'कुछ पता चला क्या? कितनी देर यहां अटके रहेंगे? कारों को किनारे क्यों नहीं ले लेते. सबको देर करा रहे हैं. वैसे ये कारें टकरायी कैसे?'

इस पर रिया बोलीं, 'वह जो महिला है न, उसकी ग़लती नहीं है पर ब्राउन सूटवाले महोदय की नींद लग गयी थी और आंखें झपकते हुए कार चला रहे थे. उसी का नतीज़ा है...

यह तो अच्छा है कि लाल सिगनल था. यदि हरा सिगनल होता तो?' न जाने कितनी कारें एक साथ टकरायी होतीं और यह रास्ता... पता नहीं क्या होता.

सभी ख़ैर मना रहे हैं कि इससे बुरा भी हो सकता था. जीनू अलग परेशान हैं. वे उन कारों के पास जाते और वापिस आ जाते हैं. कुछ भी तो नहीं किया जा सकता था. पुलिस अपना काम करके वापिस जा चुकी है. बिल्कुल शांति से पुलिसिया काम निपटा है.

रिया ने कहा, 'इन कारों का इंश्योरेंस है सो इंश्योरेंस के लोग गाड़ी यहां से ले जायेंगे और ठीक करवाकर देंगे.' महु परेशान है कि यहां सब नियमों से इतने डरे से क्यों रहते हैं. अब कारें टकरा गयीं तो टकरा गयीं.

दोनों पार्टियां बात कर लें और हर्ज़ाना देकर मामला ख़त्म करें. पर पता चला कि दुर्घटनाग्रस्त कारें सड़क

पर नहीं ले जा सकते. इंश्योरेंस वाले ही आकर लेकर जायेंगे. जब तक वे नहीं आते, ये लोग गाड़ी को चलाकर नहीं ले जा सकते. यदि ऐसा किया तो रास्तें में रोक लिये जायेंगे.

यहां ठंडी हवाएं चलने लगी हैं. शाम गहराती जा रही है. रिया अपने घर में शाम के पांच बजे का कहकर आयी हैं. घर में सब परेशान हो रहे होंगे. जीनू रिया को देखकर परेशान हैं. दोनों एक दूसरे को देखकर परेशान हैं.

शैलू और महु तो इस शहर में नये हैं. यहां के क़ानूनों से बेख़बर. यहां तो मेहमान हैं और जीनू के आसरे हैं. अब कार ड्राइवर भी पहलू बदलने लगा था. बैठे-बैठे थकने लगा था.

महु को याद आता है कि जब टोनू मुंबई आये थे तब महु के पति, जीनू और महु कार में मरीन ड्राइव गये थे. कार जीनू ही चला रहे थे.

अचानक लाल सिगनल हो जाने से कार को ज़ोर से ब्रेक मारना पड़ा और इस चक्कर में महु की कार आगेवाली कार से टकरा गयी थी.

जीनू झटके से कार से निकले थे और उसी झटके से आगेवाली कार का मालिक भी निकला था. जीनू ने हाथ जोड़कर कहा, 'आई एम सॉरी. अचानक लाल सिगनल हो गया.'

उस कार के मालिक ने कहा, 'नेवर मांइड. हो जाता है कभी-कभी.' फिर उन सज्जन ने अपनी कार के पिछले हिस्से को देखा, महु की कार के बोनट को देखा था.

उनकी कार पर हल्की-सी डेन्टिंग थी. जीनू ने कहा, 'डेन्टिंग को ठीक करवाने के पैसे हम दे देंगे.' इस पर वे सज्जन बोले, 'टेक इट ईज़ी. आई कैन अफ़ोर्ड' और दोनों हाथ मिलाकर अपनी-अपनी कारें चलाने चले गये. तीनों मिलकर ख़ूब हो-हो करके हंसे थे.

महु अपने विचारों की दुनिया में खो गयी है कि जीनू ने कहा, 'आप लोग कॉफ़ी हॉउस में कॉफ़ी पीजिए. मैं और रिया अभी आते हैं.' मरता क्या न करता, और कोई चारा भी तो नहीं था. 'चलो शैलू, अपन कॉफ़ी ही पी लेते हैं.'

यह इतने कसैले मन से कहा गया है कि महु का चाय पीने का दिल ही नहीं कर रहा है... अपने प्रति ज़रूरत से ज़्यादा हिकारत देखकर वह ख़ुद को कुंठित महसूस करने लगी है.

कॉफ़ी हॉउस में जाकर कॉफ़ी ऑर्डर की है. वह कॉफ़ी रख गया है और साथ में शक्कर के पैकेट अलग से. अब ये एक अलग आफत. अपने हाथ से ही अपनी कॉफ़ी बनाओ. घर में भी यही करो और इधर भी.

महु कॉफ़ी के घूंट भरती रही है. आस-पास की मेज़ों को देखती रही. बच्चे, बड़े सब अपने मोबाइल में व्यस्त. लग रहा है कि सबकी दुनियां इन मोबाइलों में क़ैद होकर रह गयी है. साथ में कोई नहीं. अकेलों की दुनियां देख रही है. संवेदनहीनता का चरम उत्कर्ष.

किसी को किसी की ज़रूरत नहीं है. जो एकाध प्रेमीनुमा जोड़े दिख रहे हैं वे सार्वजनिक रूप से एक दूसरे को पपियाने में लगे हैं. कौन देख रहा है और कौन नहीं देख रहा, इसकी कोई परवाह नहीं.

आधा घंटा हो गया. किसी का कोई पता नहीं है. ये लोग कहां ग़ायब हो गये भाई? महु को नितांत अकेला छोड़कर. कार दुर्घटना हुई है, कोई मरा भी नहीं है. इस पर इतना बखेड़ा? ख़ुदा न ख़ास्ता, कोई मर जाता तो ये लोग क्या करते?

ऐसे कैसे नियम हैं यहां. लोगों को हलक़ान कर रखा है. क्या लोग यहां ऐसे ही जीते हैं?

शैलू अलग परेशान हैं कि इन ठंडी हवाओं से वे बीमार न पड़ जायें. रिया और जीनू का कोई पता नहीं है. ये कहां फंस गये? अरे फ़ोन तो कर देते.

महु ने जीनू का फ़ोन लगाया तो वहां से नॉट रीचेबल सुनाई दिया है. रिया का नंबर लगाया तो स्विच ऑफ है. अजीब शै हैं ये दोनों. महु को क्या झख़ मारने के लिए बुलाया है? वह अंदर बाहर से भभक रही है.

महु रेस्तरां से बाहर निकलकर आयी है. देखा तो रिया और जीनू लगभग दौड़ते से आ रहे हैं. आते ही रिया ने कहा है, 'मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा है. ब्राउन सूटवाले तो हमारी पहचान के निकले हैं. उन्हीं से बात कर रहे थे हम दोनों. भूल ही गये आप लोगों को.' महु के चेहरे पर हल्की सी नाराज़गी का पुट वे भांप गयी हैं. नाराज़गी दूर करने के टोन में बोलीं, 'अब आपको ज़्यादा परेशानी नहीं उठानी होगी. महिला की कार को कुछ नहीं हुआ है, दोषी ये सज्जन हैं और जीनू की ओर इशारा किया है. वे झटके से अपनी कार में बैठी हैं... और इसमें झटके की क्या बात है... पति की दी हुई कार है.

यह सोचकर वह अकेले में जी भरकर हंसी है. राह चलते लोग आश्चर्य से देख रहे थे कि अकेला व्यक्ति इतना खुलकर हंस सकता है. वे उसके जीवंतपने को देखकर विस्मित हैं और हो-हो करके हंस पड़े हैं.

महु अचानक ही गाने लगी है... 'जीनेवालों को जीने का सहारा चाहिए... मरनेवालों को जीने का बहाना चाहिए.' यह गाकर वह ख़ूब हंसी है और उस फिरंगी ने हंसकर कहा है, 'शी इज़ रियली मैड!'

वह जीनू के लिए आज भी पागल लड़की है. कभी कहकर देखें... उन शब्दों को फिर से जीकर देखें. नियमों में अराजकता देखती है. कार में डेन्टिंग भी काफ़ी है. अभी इंश्योरेंस वाले गाड़ी उठाने आ रहे हैं. ये सज्जन हमें साथ लेकर जाना चाह रहे हैं.'

शैलू के मुंह से निकला है, 'वह भला क्यों?' इस सवाल का जीनू ने उत्तर दिया है, 'रिया की यहां काफ़ी पहचान है. वहां जाने पर इन सज्जन का काम जल्दी करवा देंगी. नहीं तो रात भी लग सकती है मामला निपटाने में.'

'वह तो ठीक है पर हम यहां से कब निकलेंगे. कचूमर निकल गया है हमारा.' महु ने रुआंसे स्वर में कहा है. जवाब में जीनू ने नज़र उठाकर देखा है और वह चुप हो गयी है.

शैलू और महु एक किनारे खड़े हो गये हैं. ब्राउन सूटवाले सज्जन भी इधर ही आ गये हैं. रिया अचानक उनसे ज़्यादा बतियाने लगी हैं. थोड़ी देर बाद एक लंबा ट्रक आ गया है. सबने चैन की सांस ली है.

रिया ने जीनू से कहा, 'ज़रा मेरे घर फ़ोन करके बता दीजिएगा कि मैं घर देर से आऊंगी.'

'अपने घर आप फ़ोन करके कहें तो ज़्यादा ठीक रहेगा.' यह कहकर जीनू अलग हो गये हैं. रिया ने जल्दी से एसएमएस कर दिया है. उनके चेहरे पर एक खिसियाहट-सी आ गयी है.

लंबा ट्रक एक गलियारे में जाकर रुक गया है. वहां से एक हट्टा-कट्टा और लंबा चौड़ा अधिकारी उतरा है और रिया से उनकी गाड़ी की चाभी लेकर ड्राइविंग सीट पर जम गया है और साथ ही बोला, 'कम देयर' और गाड़ी चलाकर ले गया है.

उस कार के जाने के बाद वह महिला भी अपनी कार में बैठ गयी है और ब्राउन सूटवाले सज्जन की ओर भेदभरी मुस्कान छोड़ते हुए फर्राटे से निकल गयी है. महु को अब जाकर समझ में आया था कि यह रिया जी की कार है, जिसका एक्सीडेंट हुआ है.

महु सोच रही है कि दो कारों की टक्कर ने ट्रैफ़िक जाम कर दिया. सांसें भी नियमों के अधीन हैं. मानवीय संवेदनाओं से परे, औपचारिकताओं को निभाते हुए जीने को अभिशप्त हैं ये लोग. कैसे सारे चेहरे सपाट थे. कोई मदद करने को आगे नहीं आया. पुलिस और क़ानून ही सब कुछ है यहां.

ये सुहानी शाम... महु गाने लगी है... सुहाना सफ़र और ये मौसम हंसीं... हमें डर है हम खो न जायें कहीं.

एच-१/१०१, रिद्धि गार्डन्स,
फ़िल्म-सिटी रोड, मालाड (पूर्व),
मुंबई-४०००९७.
मो.: ९८३३९५९२१६.
***E-mail** : shagunji435@gmail.com*

ग़ज़ल

✍ रामकुमार पटेल 'यार'

जुगनू छिप जाते हैं तो नूर चले जाते हैं,
इंसान अलविदा होके दूर चले जाते हैं.
रोज सुबह फिर से काम पे आ जाते हैं यारो,
मज़दूरी लेके घर मज़दूर चले जाते हैं.
पति की अरथी उठते ही विधवा हो जाती है,
पत्नी की मांग से सारे सिंदूर चले जाते हैं.
कानून के नाम तले अपराध करते हैं जुल्मी,
और हवालात यारो बेकसूर चले जाते हैं.
इतराना ज़्यादा ठीक नहीं अपनी सफलता पे,
हालात की मार से सा गरूर चले जाते हैं.

२७/१, बटाऊपाली 'ब',
पो. ऑ. गोंड़ा, वाया-सारंगढ़,
जिला-रायगढ़ (छ.ग.) ४९६४४५
मो.: ९६४४३७२३२०

लघुकथा

मां की पीड़ा

✍ महेश शर्मा

तपती दोपहरी में खेत की मेढ़ पर बैठी बूढ़ी मां अपने जवान बेटे को हल चलाते देख ख़ुश तो हो रही थी लेकिन आग उगलता सूरज और बेटे के नंगे बदन से बहता पसीना उसको विचलित कर रहे थे. वो बार-बार कह रही थी बेटा थोड़ी देर बंद कर दे, ये हलना बखरना, सूरज को थोड़ा ठंडा हो जाने दे तब तक रोटी खा ले बेटे का साथ देती उसकी घरवाली इन बातों को दिखावा, झूठा चोचला मानती हुई बुढ़िया को सौ-सौ ताने मारती उसकी हंसी उड़ा रही थी.

बूढ़ी मां से रहा नहीं गया. अपनी गोद में सो रहे एक साल के नन्हे पोते को लिये ही वो बीच खेत में जा बैठी और खेत की मिट्टी को ठीक करने लगी. जेठ की दोपहरी बड़े बड़ों को बेचैन कर देती है आधे घंटे में ही तो वो नन्हा बच्चा गर्मी से लाल हो गया, जो रोना शुरू किया तो चुप होने का नाम ही ना ले. अचानक बहू को बेटे का ध्यान आया दौड़ी चली आयी. सासू की गोद से अपने बेटे को छुड़ाया, गले से लगाया. सासू को सौ-सौ बातें सुनायीं. निर्दयी, कठोर और जालीम की उपमा देती अपने बेटे को लेके बरगद की घनी छांव में ले जाकर दूध पिलाने लगी.

थोड़ी ही देर में नन्हा बच्चा मां का दूध पीते-पीते चुप हो कर सो गया. बहू अब संतुष्ट थी, उसका बेटा अब सुरक्षित था, सुकुन से था. बूढ़ी मां अभी भी बेचैन थी उसका बेटा अभी भी तपते सूरज की भीषण गर्मी में नंगे बदन हल चला रहा था.

क्या दोनों की ममता अलग-अलग थी?

✍ *२२४ सिल्वर हिल कॉलोनी,*
धार (म. प्र.)
मो. : ८२३६९४०२०१

लघुकथा

नियमों में आदत

✍ सत्य शुचि

गांव की चौपाल पर एक भव्य समारोह में वह ग्राम सरपंच हुए थे.... खुले में शौच से मुक्त गांव के लिए! और उनके प्रयासों को गांव भर में भरपूर प्रशंसा मिली थी. तत्पश्चात वह अभी गदगद् से हो चले थे.

मगर अगले रोज़ ही अंधेरे-अंधेरे एक संदिग्ध व्यक्ति खेत से अपने घर की तरफ़ लौटने की धुन में था.

'... खुले में शौच से एक अलग ही क़िस्म की आनंदानुभूति मिलती है और फिर स्वास्थ्य भी शुद्ध हवा से तरोताज़ा रहता है!' और वह बुदबुदाया.

बहरहाल, वह संदिग्ध व्यक्ति, सरपंच ही था.

✍ *साकेत नगर, ब्यावर-३०५९०१.*
मो. : ९४१३६८५८२०.

स्मृति-शेष

हिंदी साहित्य के वरिष्ठ संपादक, पत्रकार, लेखक श्री सत्यनारायण मिश्रजी का १ अगस्त २०१६ को निधन हो गया. वे ८२ वर्ष के थे. २७ जून १९३४ में सिरोही बहाली गांव में आपका जन्म हुआ था. सत्यनारायण मिश्र बहुमुखी प्रतिभा और शांत स्वभाव के व्यक्ति थे. सत्यनारायण मिश्र जी साहित्यिक पत्रिका 'अणुव्रत' और 'नवनीत' के संपादक रह चुके हैं. धर्मयुग, सरिता, साप्ताहिक हिंदुस्तान, नंदन, दीपशिखा, रामसंदेश जैसी अनेक पत्र-पत्रिकाओं के संपादन में सहयोग किया.

सन १९६७ में 'जीवन प्रभात' साहित्यिक पत्रिका की शुरुआत की, फिर १९७० में 'जीवन प्रभात प्रकाशन' की शुरुआत हुई. सत्यनारायण मिश्रजी ने अपना सारा जीवन हिंदी साहित्य को समर्पित किया है. सत्यनारायण मिश्रजी के जाने से हिंदी साहित्य जगत में एक अपूरित कमी महसूस होती रहेगी.

- शरद मिश्र

कहानी

सलीब पर लटका आदमी

गोविंद उपाध्याय

यह एक उदास शाम थी. हालांकि अब मेरे लिए शाम की उदासी का कोई मतलब नहीं रह गया था. मुझे अब बिल्कुल याद नहीं कि कब मैंने आख़िरी बार अपनी शाम इस शहर के किसी रेस्टोरेंट, काफ़ी हॉउस या फिर किसी मित्र के साथ बितायी थी. शाम होते-होते मैं इतना थक चुका होता हूं कि बस घर आते ही बिस्तर पर गिर जाता हूं और थकान से टूटते शरीर को ढीला छोड़ देता हूं. काफ़ी समय से ऐसा ही चल रहा है. नौकरी के अंतिम कुछ साल इतने कठिन भी हो सकते हैं, ऐसा कभी नहीं सोचा था. लेकिन आज मैं बिस्तर पर नहीं लेट पाया. बाहर नीम के पेड़ के नीचे प्लास्टिक की चेयर डाल कर बैठ गया. नीम के पेड़ पर रहनेवाली गिलहरियां मुझे आश्चर्य से देख रही थीं. सामने बबूल का जंगल और घना हो गया था. और उससे ज़्यादा घना जंगल मेरे भीतर उग आया था. सूखा, पत्तों रहित...तेज़ नुकीले कांटों से भरा.. आख़िर ऐसा क्यों था? इस सवाल का कोई जवाब मेरे पास नहीं था. मुझे अब लगता है कि किसी साइकोलॉज़िस्ट से बात करनी चाहिए. आख़िर मेरे अंदर इतनी चुभन किस लिए? सब कुछ तो वैसा ही हुआ, जैसा मैं चाहता था. अभी मेरे पास पांच साल की नौकरी थी और मैं अपनी ज़िम्मेदारियों से मुक्त था. फिर भला उदासी का क्या मतलब..? शायद एक जैसी ज़िंदगी जीते हुए मैं अपने आप से ही ऊब चुका था. आगे आने वाला समय तो और ज़्यादा उदासी भरा होने वाला था.

नहीं मुझे अपने बारे में कुछ नहीं सोचना है. लालवानी साहब जैसे लोग भी तो इसी दुनिया में हैं. जो लड़ रहे हैं. हार रहे हैं. फिर भी जीना चाहते हैं. शायद लालवानी साहब की मुलाक़ात का असर था कि मैं यह सब फ़िजूल की बातें सोच रहा था.

शंभू लालवानी से मिलने के बाद, मेरे अंदर एक ऐसा तूफ़ान मचा है कि न चाहते हुए भी अवसाद की मोटी चादर मेरे मनमस्तिष्क के चारों तरफ़ लिपटती जा रही है. मैं उस चादर को जल्दी से नोच कर अपने को आज़ाद करना चाहता हूं. लालवानी मुझे इस अवस्था में मिलेंगे, इसकी तो कभी मैंने कल्पना ही नहीं की थी. कितने ख़ूबसूरत हुआ करते थे लालवानी साहब. गोरे-चिट्टे...पांच फुट सात इंच के लंबे....क्लीन शेव्ड....हमेशा मुस्कराते रहने वाला चेहरा... सेवानिवृत्ति वाले दिन भी लाल टी-शर्ट और ब्लू-व्हाइट ज़ीन्स में वे अपनी उम्र से कम दिख रहे थे. तभी तो दीपांकर शर्मा ने कहा था, 'यह साला कभी बूढ़ा नहीं होगा. इसे देखकर भला कौन कह सकता है कि आज इसका रिटायरमेंट है.'

हां! उसी लालवानी को आज मैंने देखा था, बारह साल बाद...नहीं नौ साल बाद... सेवानिवृत्ति के तीन साल तक तो वह मेरे आवास के पास ही एक रेस्टोरेंट चला रहे थे. मेरी उनकी अक्सर मुलाक़ात हो जाती थी. फिर वह रेस्टोरेंट अचानक बंद हो गया और हमारी मुलाक़ातें भी...

आज दोपहर के बाद का समय था. दो ...सवा दो बजे...तब मैं ऑफ़िस में अकेला था. एक आदमी मेरे सामने आकर खड़ा हो गया, 'मिश्रा जी कहां मिलेंगे...?' दुबले-पतले और टेढ़े मुंह वाले उस आदमी को खड़े होने में परेशानी हो रही थी. मैंने उसे ध्यान से देखा और उछल पड़ा, 'लालवानी साहब...! आप...!! बैठिए न ... बैठिए ... बैठिए ...'

वह हिचकिचाते हुए सामने पड़ी कुर्सी पर बैठ गये. उनका चेहरा अजीब–सा लग रहा था. मुंह दाहिने तरफ़ चला गया था. बोलते समय भी पूरा मुंह नहीं खुल पा रहा

था. बोलने में अधिकांश शब्द विकृत हो कर अपनी पहचान खो दे रहे थे. मुझे उनकी बात समझने में बहुत कठिनाई हो रही थी. वे शायद मुझे पहचान नहीं पाये थे. मैंने उन्हें समझाने का प्रयास किया, 'लालवानी साहब, मैं ही मिश्रा हूं. रमाकांत मिश्रा....'

अब उनके चेहरे पर परिचित मुस्कराहट थी, 'यार मिश्रा...तू कितना बदल गया है. बहुत मोटा हो गया है यार... तू मेरा कितना प्यारा साथी था. तुझे इतने सालों में मुझसे मिलने की ज़रा भी इच्छा नहीं हुई. पूरी तरह से मुझे अपने ज़ेहन से मिटा दिया. कभी फ़ोन भी नहीं किया. तुझसे ऐसी उम्मीद नहीं थी. यार कम-से-कम अपनी बेटियों की शादी में ही पूछ लेता. मेरी गोद में खेली थीं. मैं इतना बुरा तो नहीं था.'

मेरे पास उनकी बात का कोई जवाब नहीं था. निश्चित ही यह मेरे लिए शर्मिंदगी का विषय था. मुझे उनसे बात करनी चाहिए थी. उनसे संपर्क रखना चाहिए था. मानवता के नाते...सहकर्मी के नाते...लेकिन मैं उनसे कोई संपर्क नहीं रख पाया. शायद मैं ख़ुदगर्ज इंसान हूं. वह ख़ुद ही अपनी राम कहानी बताने लगे...पत्नी की बीमारी की... पुत्र के निकम्मेपन की और उन सब कठिनाइयों से लड़ ही रहे थे कि कैंसर चपेट में वह ख़ुद आ गये...

'यार मेरा जीभ काट दिया गया है. अब कोई स्वाद नहीं मिलता है. सब कुछ पीस कर लेना पड़ता है. वज़न निरंतर घट रहा है. अब ज़िंदगी में कोई मज़ा नहीं रह गया है. पत्नी के मरने के बाद तो बिलकुल नहीं... साला टाइम पास नहीं होता है ...लेकिन मैं भी दस साल और जीना चाहता हूं. यदि मैं जी गया तो मेरा पोता अपनी पढ़ाई पूरी कर लेगा. यार लड़के ने सब बर्बाद कर दिया. कुछ नहीं है सिवाय उस घर के...और अब वह भी मरम्मत के बिना खंडहर हो रहा है.'

शंभू लालवानी को लेकर मैं कैफ़ेटेरिया में आ गया. हम दोनों कॉफ़ी पीने लगे और पुराने समय की तमाम बातों को याद करके ख़ुश होते रहें. दो घंटे हम साथ रहे. बार-बार हम पच्चीस-तीस साल पीछे भाग जाते और जब तक हम किसी बात को याद कर ख़ुश हो रहे होते, हक़ीकत हमें वर्तमान के चौखट पर ला कर पटक देती और हम फिर से उदास हो जाते. अचानक उन्हें कुछ याद आ गया, 'यार मिश्रा चलता हूं. ज़्यादा परेशान मत हुआ करो. मस्त रहना सीखो. कुछ भी हमारे हाथ में नहीं है. करने वाला तो कोई और है. वैसे भी तू अपनी दोनों बेटियों की शादी कर चुका है. बेटा कोई है नहीं... चार साल तो चुटकी बजाकर निकल जायेंगे. साला ऑफ़िस के काम को लेकर ज़्यादा परेशान मत हुआ कर. जितना हो सके आराम से कर... ऊपर वाला जो करेगा, अच्छे के लिए ही करेगा.' उन्होंने अपनी दांये हाथ की तर्जनी से ऊपर की तरफ़ इशारा किया और उठ गये.

शंभू लालवानी चले गये. मैं वापिस ऑफ़िस में आ गया. अपने अधूरे काम को पूरा करने का प्रयास करने लगा. लेकिन मन था कि बार-बार भटक जा रहा था. तब यह

१५ अगस्त १९६० (कानपुर)

: प्रकाशन :

तीन दशक से भी ज़्यादा समय से कहानी लेखन में सक्रिय, देश की लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कहानियों का निरंतर प्रकाशन. आंचलिक कथाकार के रूप में विशेष पहचान. कुछ कहानियों का बांग्ला, तमिल और उर्दू में अनुवाद.

छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर से लघु शोध-प्रबंध 'गोविंद उपाध्याय की कहानियों में सामाजिक जीवन.' 'बारात और पीढ़ी' कहानियां पाठ्य-पुस्तक में संकलित.

: पुरस्कार :

'कादंबिनी' द्वारा आयोजित साहित्यिक महोत्सव में कहानी पुरस्कृत और प्रकाशित. 'कथाबिंब' के 'कमलेश्वर स्मृति कथा पुरस्कार' में कहानी को उत्तम पुरस्कार. 'कमलेश्वर-वर्तमान साहित्य कथा पुरस्कार' में कहानी. चयनित एवं प्रकाशित.

: कृतियां :

पंखहीन, समय, रेत और फूकन फूफा, सोनपरी का तीसरा अध्याय, चौथे पहर का विरह गीत, आदमी, कुत्ता और ब्रेकिंग न्यूज़, बूढ़ा आदमी और पकड़ी का पेड़ तथा नाटक तो चालू है... (कहानी संग्रह).

: संप्रति :

रक्षा प्रतिष्ठान में नौकरी.

ऑफ़िस कितना भरा-भरा सा था. साठ लोग काम करते थे. सारा काम मैनुअल था. मैं चौबीस साल का नया-नया नौजवान था. मुझे जिस आदमी के साथ काम पर लगाया गया वह शंभू लालवानी ही थे. मुझसे एक ग्रेड ऊपर... वह मेरे बॉस तो नहीं थे. उन्हें मुझे ऑफ़िस के तौर-तरीक़े के साथ-साथ काम भी सिखाना था.

दो महीने में ही मुझे इतना तो समझ में आ गया कि लालवानी को काम तो ज़्यादा नहीं आता है, लेकिन सरकारी नौकरी कैसे की जाती है, उसमें दक्षता हासिल थी. दो माह बाद मुझे मुखर्जी के साथ लगा दिया गया. उन दो महीनों में हम और लालवानी अपना लंच शेयर करने लगे. लालवानी के टिफ़िन में रोटियां होतीं और मेरे टिफ़िन में चावल भी होता. उन्हें चावल पसंद था. वह मुझे एक रोटी देते और मुझसे चावल लेते. यह सिलसिला उनके सेवानिवृत्ति तक चला. वह अपने को मेरा गुरू मानते थे और बड़े गर्व से बताते, 'यह अपना बच्चा है. बहुत सीधा बंदा है. मैंने इसे काम सिखाया.'

मैंने कभी उनकी इस बात पर कोई आपत्ति नहीं जतायी. लालवानी साहब तब चौवालीस के थे. तीन बेटियों और एक बेटे के बाप थे. लड़कियां सुंदर और मेधावी थीं. जबकि लड़का शुरू से थोड़ा मंद बुद्धि था. पत्नी का नाम सुबोध था. लड़कों के नाम जैसा ही लगता था. ऑफ़िस के लोग उन्हें सुबोध परजाई कहते थे. ख़ुद लालवानी साहब उन्हें 'जानू' कहते थे.

लालवानी हमेशा मस्त रहते. मैंने उन्हें कभी परेशान नहीं देखा था. जबकि सुबोध परजाई को वर्तमान हालत से हमेशा असंतुष्ट ही पाया. लालवानी के पिता कपड़े के थोक मार्केट के बहुत बड़े व्यापारी थे. लालवानी चार भाई थे. सबसे बड़े भाई के पास कई बड़ी कंपनियों के अंडर गारमेंट की एज़ेंसी थी. दोनों बेटे भी उनके साथ यह व्यापार संभालते थे. लालवानी के शेष दो भाई अपने पुस्तैनी कपड़े के बिज़नेस को संभाल लिये थे. सबसे छोटे ख़ुद शंभू थे. उन्हें यह सरकारी नौकरी मिल गयी थी. भाइयों ने घर इनको दे दिया. घर शहर के मध्य में था. तीन मंज़िला. लालवानी सबसे ऊपर की मंज़िल में रहते. बाक़ी दो मंज़िल पर किरायेदार थे. जब समय कुछ और आगे बढ़ा तो बड़े भाई ने आपत्ति जतायी, 'पिता के हिस्से का मुझे भी तो कुछ मिलना चाहिए.'

तब पिता का व्यापार हथियाये दोनों भाइयों ने मकान का भूतल का हिस्सा बड़े भाई को दिला दिया. जिसे बड़ा भाई गोदाम के रूप में उपयोग करने लगा. यह बात सुबोध परजाई को अच्छी नहीं लगी. लेकिन वह चाहकर भी कुछ नहीं बोल पायीं. सब आगे बढ़ते चले गये, लेकिन शंभू लालवानी की प्रगति रुक–सी गयी थी. नौकरी में तो सब कुछ कैलकुलेटेड था. यही कारण था सुबोध परजाई की असंतुष्टि का, 'बड़ा भरोसा है इन्हें अपने भाइयों पर... पता नहीं किस दुनिया में रहते हैं. वे इनके फटे पर मूतेंगे भी नहीं. ख़ुद कभी कुछ जोड़कर रखा नहीं. कुछ बोलो तो आसमान की तरफ़ उंगली उठा देंगे — 'वह करेगा... सब कुछ.' अगर वही सब कुछ करने लगेगा तो दुनिया निकम्मो का बसेरा बनकर रह जायेगी.'

सुबोध परजाई का सोचना भी सही था. लड़कियां सयानी हो चुकी थीं. तीनों की उम्र में बहुत ज़्यादा फ़ासला नहीं था. उनकी शादी-विवाह की चिंता होना स्वभाविक था. जबकि लालवानी साहब भाइयों के भरोसे हाथ पर हाथ रखे बैठे हुए थे.

सुबोध परजाई भी लालवानी से कम सुंदर नहीं थी. दूरदर्शन के किसी ननद-भौजाई वाले सीरियल की भौजाई जैसी ...सजी–संवरी और उतनी ही ख़ुश मिज़ाज... खाना भी बहुत स्वादिष्ट बनाती थीं. मैं न जाने कितनी बार उनके हाथों का पराठा खा चुका था. मूली, गोभी और आलू के कुरकुरे पराठे... पोदीने की चटनी के साथ उनका स्वाद...वाह क्या कहना...

लेकिन परजाई को बड़ी बेटी के विवाह की बहुत दिन तक चिंता नहीं करनी पड़ी. उसका एक लड़के से अफ़ेयर चल रहा था. लड़का पंजाबी था और परिवहन विभाग में किसी अधिकारी के पद पर काम करता था. थोड़ा ना-नुकुर के बाद विवाह संपन्न हो गया. सुबोध परजाई का कथन सही निकला. भाई मेहमान बनकर आये और वर-वधू को तोहफ़ा पकड़ाकर चले गये. पूरे फ़ंक्शन का ख़र्चा लालवानी को ही झेलना पड़ा. लालवानी कर्ज़दार हो गये. उसी समय उन्होंने कैटरिंग का काम शुरू किया था. नौकरी के पांच-सात साल बचे थे. मूढ़-मगज़ बेटे को भी सेट करना था. तीन साल उनकी कैटरिंग का धंधा ख़ूब चला. तब उनका ज़्यादातर समय नौकरी की जगह धंधे पर होता. ऑफ़िस में लालवानी की प्रगति बहुत लोगों को पसंद नहीं थी. लेकिन लालवानी

मस्त थे. इन्हीं तीन सालों में उन्होंने अपनी दोनों बेटियों की शादी निपटा दीं. मुझे भी आश्चर्य हुआ था. लालवानी ने मेरे आश्चर्य को विराम दिया, 'देख मिश्रा, मेरा काम अच्छा चल रहा है. हम व्यापारी लोग हैं. किसी भी धंधे को पकड़ेंगे तो सफल ही होंगे. फिर यह फ़ील्ड तो इस शहर के लिए नया है. ज़्यादा कंपटीशन नहीं है. काम अच्छा होता है तो लोग दूसरे को भी सलाह देते हैं. कस्टमर भी खिलाने-पिलाने के झंझट से मुक्त...और हमें भी दो पैसे कमाने को मिल जाता है.'

सुबोध परजाई भी कैटरिंग में उनका हाथ बंटाती थीं और बेटा भी. लेकिन बहुत ज़्यादा समय तक वह इस धंधे को नहीं चला पाये. उसके तीन कारण थे. पहला... बाज़ार में और कैटरर्स आ गये. दूसरा... मारज़िन कम होने पर प्रॉफ़िट कमाने के चक्कर में खाने के स्तर में गिरावट आ गयी. तीसरा... सुबोध परजाई बीमार रहने लगीं. बेटा ठीक से काम को संभाल नहीं पाया. ख़ुद लालवानी साहब को अपनी नौकरी भी करनी थी. तब रिटायरमेंट के डेढ़ साल बाक़ी थे. हालांकि लालवानी इससे विचलित नहीं हुए थे, 'मिश्रा तू नहीं समझेगा. यह धंधा है उतार-चढ़ाव तो चलता ही रहता है. तेरी परजाई दगा दे गयी. उसे साली अजीब बीमारी है. वह सब भूलने लगी है. दवा चल रही है. लेकिन हमें तो कोई फ़ायदा नहीं दिखता है.'

लालवानी को अब पैसा कमाना था. वह दुर्गा पूजा और दशहरे में छोले-भटूरे और कुल्चे का स्टाल लगाते. किसी परचित के घर कोई भोज का कार्यक्रम है तो अपने खटारा स्कूटर और बेटे को लेकर पहुंच जाते. ऑर्डर मिल गया तो भला नहीं मिला तो भी भला. मेरी पत्नी लालवानी को बहुत सम्मान देती. मुझे याद है पहली बार वह उनसे ऑफ़िस के किसी स्टाफ़ के घर भोज में मिली थी.

'भाभीजी नमस्ते...मैं शंभू लालवानी...मिश्रा जी के साथ काम करता हूं. शायद उन्होंने मेरी कभी चर्चा की हो...' लालवानी अपना परिचय दे रहे थे और पत्नी घबड़ा गयी थी. अपने से लगभग दोगुने उम्र के आदमी से 'भाभी' का संबोधन सुनकर. तब इस नौकरी में आये मुझे दो साल भी नहीं हुए थे. मैंने पत्नी से हंसते हुए कहा था, 'ये लालवानी साहब हैं. तुम्हारे सबसे छोटे देवर हैं.'

हालांकि मेरी पत्नी बहुत संकोची थी. ऑफ़िस के लोगों से बहुत कम बातें करती थी. लेकिन लालवानी से वह ख़ूब बात करती थी. उसी समय एक घटना हो गयी थी. पत्नी एक बार फिर गर्भवती हो गयी. दोनों बेटियां हो चुकी थीं. छोटी डेढ़ साल की थी. मैं तीसरा बच्चा किसी भी हालत में एफ़ोर्ड करने की स्थिति में नहीं था. मेरे पास एबॉर्शन ही एक विकल्प था. मैंने लालवानी से अपनी परेशानी बतायी. लालवानी कुछ देर तक सोचते रहे और फिर बोले, 'मिश्रा तू बैठ मैं डॉक्टर को फ़ोन करके बात करता हूं.'

पंद्रह मिनट बाद वापस आये, 'मिश्रा तेरा काम हो गया. तू आज भाभी को लेकर शाम को मेरे घर आ. मेरे नीचे जो डॉक्टरनी रहती है, डॉ. खंडूजा. बढ़िया डॉक्टर है. वह तेरा काम कर देगी.'

हम पति-पत्नी पहली बार लालवानी के घर गये. उनकी बेटियां बहुत मिलनसार थीं. मेरी नन्ही बच्चियों को उन्होंने अपने पास रख लिया. हम डॉ. खंडूजा के क्लीनिक पहुंचे. काफ़ी भीड़ थी. सुबोध परजाई डॉक्टर के पास जाकर कुछ बुदबुदायी. उन्होंने अटेडेंट को इशारे से बुलाया और वह पत्नी को लेकर कहीं अंदर चली गयी. आधे घंटे बाद पत्नी आयी तो उसे देखकर मेरी रूह कांप गयी. उसका चेहरा पीला पड़ चुका था और उसे बात करने में तकलीफ़ हो रही थी. डॉक्टर साहिबा ने मुझे इशारे से बुलाया और धीमी किंतु सख़्त आवाज़ में बोला, 'दुबारा मेरे पास इस काम के लिए न आना. सब ठीक हो गया है. थोड़ी कमज़ोरी है वह भी एक-दो दिन में ख़त्म हो जायेगी. लेकिन यह अच्छी चीज़ नहीं है.'

पत्नी की हालत देखकर मैं पहले से ही इन हालातों के लिए स्वयं को अपराधी मान रहा था और अब डॉक्टर के शब्द...

सुबोध परजाई मेरी दोनों बच्चियों को लेकर आ गयी थीं. छोटी सो चुकी थी. रात के नौ बज रहे थे. लालवानी कहीं से आटो रिक्शा पकड़ लाये थे. पत्नी को उन्हीं लोगों ने सहारा देकर बैठाया. बड़ी बेटी मां की हालत देखकर सहमी हुई थी. सुबोध परजाई ने मुस्कराने का प्रयास किया, 'घबराने की ज़रूरत नहीं है. ऐसा होता है. दूध में हल्दी डालकर उसे पिला देना. बच्चियों को मैंने खिला-पिला दिया है. यह आपका डिब्बा है. क्या भाई साहब पहली बार आप मेरे घर पर आये ...और...' उन्होंने बात वैसे ही अधूरी छोड़ दी. मेरे हाथ में लंच बॉक्स था. पहली बार मैंने सुबोध परजाई के हाथ का बना पराठा खाया था.

शायद इस घटना के कारण ही पत्नी को लालवानी के परिवार के प्रति एक विशेष लगाव हो गया था. जब भी कुछ विशेष बनता, मेरे टिफ़िन में लालवानी के लिए अलग से रख देती.

लालवानी जिस दिन रिटाय्र हुए , उसी दिन 'लालवानी रेस्टोरेंट' का उद्‌घाटन हुआ था. उस रेस्टोरेंट में ही उनके रिटायरमेंट की पार्टी हुई थी. दुकान ठीक थी. मेन मार्केट में....चलने की पूरी संभावना थी. लेकिन चल नहीं पायी. लालवानी के पास इतनी ऊर्जा नहीं थी. कि वे अट्ठारह घंटे लगातार काम कर सकें. बेटे के पास इतनी अक़्ल नहीं थी कि वह इस रेस्टोरेंट को चला सके. सुबोध परजाई की बीमारी इतनी बढ़ गयी थी कि वह मुझे तक पहचानने में असफल रहती थी. रेस्टोरेंट का घाटा बढ़ता गया और एक दिन उसमें ताला लग गया. लालवानी से मेरी वह आख़िरी मुलाक़ात थी, 'मिश्रा मैं बरबाद हो गया. इस लड़के ने मुझे कहीं का नहीं छोड़ा. फ़ंड-ग्रेज्युटी सब मैंने इस रेस्टोरेंट में लगा दिया. सब स्वाहा हो गया. एक धेला नहीं बचा यार...' शंभू लालवानी की आवाज़ भर्रा गयी थी.

उस रेस्टोरेंट के खुलने से सिर्फ़ एक फ़ायदा हुआ कि लालवानी के बेटे की शादी हो गयी और जब वह रेस्टोरेंट बंद हुआ तो वह दो साल के बेटे का बाप था.

रेस्टोरेंट बंद होने के बाद हम नहीं मिले. इसके पीछे कोई मज़बूत कारण नहीं था. हां! बेटियों के शादी के समय पत्नी ने लालवानी को निमंत्रित करने को कहा था. यहां तक मुझे याद है, मैंने उन्हें निमंत्रण पत्र भिजवाया भी था. लेकिन वह उनके पास तक नहीं पहुंच पाया.

हां! ऑफ़िस के दूसरे लोगों से टुकड़ों में ख़बर मिलती रहती थी. लालवानी का बेटा पीज़ा पार्लर में डिलीवरी बॉय बन गया था और लालवानी घर के पास के डिग्री कालेज़ के बाहर कचौड़ियों और पराठों की दुकान चलाने लगे थे. फिर यह ख़बर भी आयी कि सुबोध परजाई की हालत बहुत ख़राब हो गयी है. अब वह किसी को नहीं पहचानतीं. बिस्तर पर ही हगना-मूतना सब कुछ हो रहा है. बेचारे लालवानी सब कुछ छोड़कर दिन-रात उन्हीं की सेवा में लगे रहते हैं. तीन साल पहले यह ख़बर मिली कि सुबोध परजाई नहीं रहीं. मुझे ये ख़बरें इतने विलंब से मिलतीं कि मेरे जाने का कोई मतलब ही नहीं रह जाता. एक सच यह भी था कि मैं उनका सामना करने से घबड़ाता था.

लालवानी की जीभ पर हुए घाव के बारे में भी किसी ने बताया था. तब यह नहीं पता था कि वह कैंसर से लड़ रहे हैं. उम्र के इस पड़ाव पर आकर इतना सब कुछ झेलने के बाद भी लालवानी अभी दस साल और जीना चाहते हैं. अपने पोते के लिए.... सेवानिवृत्ति के कुछ दिन पहले ही लालवानी ने कहा था, 'मिश्रा तेरा डिसीज़न सही था. दो बेटियों के बाद स्टॉप...मुझे तो साला अपने बाप की हवेली में दिया जलाने के लिए वारिस चाहिए था. आज मैं सिर्फ़ बेटियों का बाप होता तो सकून से ज़िंदगी काट लेता. लेकिन इस बेटे को सलीब की तरह सारी ज़िंदगी कंधे पर ढोना है.'

शंभू लालवानी बेटे को कहां सलीब की तरह कंधे पर ढो पाये. कोई किसी को नहीं ढो पाता है. हां, एक दिन वह ख़ुद उस सलीब पर लटक जाता है. लेकिन इस बात का एहसास उसे ज़िंदगी की अंतिम सांस तक नहीं होता है.

मुझे लग रहा था कि मेरे सीने से कोई बड़ा-सा पत्थर बांध दिया गया है और मैं ठीक से सांस नहीं ले पा रहा हूं. गिलहरी के दो नन्हें बच्चे फुदक रहे थे. बबूल की झाड़ी के पास खड़ी गाय अपने बझड़े की गर्दन को चाट रही थी. आसमान में पक्षी वापस अपने गंतव्य की तरफ़ लौट रहे थे. अंधेरा अपना पैर फैलाने लगा था. मैं प्लास्टिक की कुर्सी उठाकर अपने कमरे की तरफ़ चल दिया. आंखें जल रही थीं और थकान से मेरा बदन टूट रहा था.

एफ.टी.- २११, अरमापुर इस्टेट,
कानपुर- २०८ ००९,
मो.- ९६५१६७०१०६.
ई-मेल : govindupadhyay78@gmail.com

डीटीपी के लिए संपर्क करें

समाचार पत्र, पुस्तकों व पत्रिकाओं, इनव्हिटेशन कार्ड, विजिटिंग कार्ड के डीटीपी, ले-ऑउट और डिझाइन के लिए संपर्क करें.

सुगी आर्ट्स

३०२, वडाला उद्योग भवन, वडाला,
मुंबई-४०० ०३१.
मो.नं.: ९८३३५४०४९०/९८९२८३११४६

संस्कृति संरक्षण संस्था

(Regn. No. E 23216 dt. 7-2-2006)

ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई-४०० ०८८. # फ़ोन : २५५१५५४१

संस्था की गतिविधियां व उद्देश्य

भारत की सामासिक संस्कृति, साहित्य, कला, भाषा तथा स्वस्थ परंपराओं को संरक्षित एवं संवर्धित करने के उद्देश्य से ***संस्कृति संरक्षण संस्था*** की स्थापना की गयी है.

संस्था की कुछ नियमित गतिविधियां इस प्रकार हैं:

१. संगीत की कक्षाएं नियमित चलाना.

२. संस्था के भाषा-विभाग द्वारा ***"कथाबिंब"*** त्रैमासिक कहानी पत्रिका का नियमित प्रकाशन. पिछले कई वर्षों से पत्रिका ने, वर्ष २००७ के प्रारंभ में दिवंगत हुए हिंदी साहित्यकार पद्मविभूषण **श्रीयुत कमलेश्वर** की स्मृति में अपने वार्षिक कहानी पुरस्कार का नाम ***"कमलेश्वर-स्मृति कथाबिंब कथा पुरस्कार"*** रखा है. ये पुरस्कार पत्रिका में पूरे वर्ष में प्रकाशित कहानियों पर पाठकों के अभिमतों के आधार पर दिये जाते हैं. ***"कथाबिंब"*** किसी भी भाषा की एक मात्र पत्रिका है जो इस प्रकार का आयोजन करती है.

३. संगीत-नृत्य के कार्यक्रम आयोजित करना.

४. हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के कार्यक्रमों का आयोजन, जैसे : कवि-सम्मेलन व काव्य-सृजन प्रतियोगिताएं.

५. विद्यार्थियों के मन में संस्कृत भाषा के प्रति रुझान उत्पन्न करने हेतु प्रति वर्ष संस्कृत श्लोक वाचन-पठन प्रतियोगिता आयोजित करना.

६. हिंदी-पुस्तकालय प्रबंधन / संचालन.

७. जनसामान्य को सीधे प्रभावित करने वाले विषयों पर समय-समय पर संगोष्ठियों, परिचर्चाओं का आयोजन. सर्वप्रथम, १३ अक्तूबर २००७ को संस्था द्वारा आयोजित **"कंप्यूटर के विविध उपयोग और हिंदी"** विषय पर आयोजित संगोष्ठी को अप्रत्याशित सफलता प्राप्त हुई. इसी तरह **"भारतीय ऊर्जा समस्या : सुझाव व समाधान"** (१५ फरवरी २००९), **"चिकित्सा की वैकल्पिक पद्धतियां, निदान व उपचार"** (२७ फरवरी २०१०), **"शिक्षा का वर्तमान स्वरूप एवं परिवर्तन की दिशा"** (१२ मार्च २०११), **"राष्ट्र निर्माण और युवा शक्ति"** (३ फरवरी २०१३), **"वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारतीय संस्कृति की सार्थकता"** (९ मार्च २०१४), **"विश्व के उत्थान में भारतीय मनीषियों का योगदान"** (०१ फरवरी २०१५), **"डिज़ीटल इंडिया पहल में हिंदी व अन्य भाषाओं की भूमिका"** (३१ जनवरी २०१६) विषयों पर भी संगोष्ठियां आयोजित की गयीं. कहना न होगा सभी को पर्याप्त सराहना मिली.

८. देश में उपलब्ध चिकित्सा के निदान व उपचार की अन्य पद्धतियों जैसे, आयुर्वेद एवं प्राकृतिक चिकित्सा व निदान आदि के विकास में सहयोगी बनना.

९. वैदिक ज्ञान को संरक्षित करने में सहयोगी होने का प्रयास.

१०. भारतीय भाषाओं में कंप्यूटर (संगणक) के प्रयोग को सत्वरता लाने के प्रयासों में सहयोगी बनना.

११. इन सभी प्रयासों के लिए हमारी संस्था को अलग-अलग भवनों की आवश्यकता है और ऐसे सेवाभावी सहयोगियों की आवश्यकता है जो हमें इतनी राशि प्रदान करें जिसे नियतकालिक निधि के रूप में जमा किया जा सके तथा अर्जित व्याज से हम अपनी गतिविधियों का संचालन कर सकें.

नोट : संस्था को आयकर अधिनियम की धारा ८०-जी के अंतर्गत प्रमाणपत्र प्राप्त है. इसके अंतर्गत सभी दानदाता रियायत के अधिकारी हैं.

आमने-सामने

'असली उड़ान बाक़ी है, अभी इम्तिहान बाक़ी है!'

✍ *अशोक वशिष्ठ*

बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है, लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने-सामने'. अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नी सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रज़ाक, मदन मोहन 'उपेंद्र', भोला पंडित 'प्रणयी', महावीर रवांल्टा, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद 'नूर', डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम', सुरेंद्र रघुवंशी, राजेंद्र वर्मा, डॉ. सेराज खान 'बातिश', डॉ. शिव ओम 'अंबर', कृष्ण सुकुमार, सुभाष नीरव, हस्तीमल 'हस्ती', कपिल कुमार, नरेंद्र कौर छाबड़ा, आचार्य ओम प्रकाश मिश्र 'कंचन', कुंवर प्रेमिल, डॉ. दिनेश पाठक 'शशि', डॉ. स्वाति तिवारी, डॉ. किशोर काबरा, मुकेश शर्मा, डॉ. निरुपमा राय, सैली बलजीत, पलाश विश्वास, डॉ. रमाकांत शर्मा, हितेश व्यास, डॉ. वासुदेव, दिलीप भाटिया, माला वर्मा, डॉ. सुरेंद्र गुप्त, सविता बजाज, डॉ. विवेक द्विवेदी, जयप्रकाश त्रिपाठी, डॉ. अशोक गुजराती, नीतू सुदीप्ति 'नित्या', राजम पिल्लै और सुषमा मुनींद्र से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है अशोक वशिष्ठ की आत्मरचना.

मेरा बचपन? सात वर्ष का था जब बाबूजी अपनी आयु के बत्तीसवें वर्ष में मेरी अट्ठाईस वर्षीय मां और हम पांच भाई-बहनों को छोड़कर स्वर्ग सिधारे. मुझसे बड़ी बहन केवल ग्यारह वर्ष की थीं.

मेरा जन्म उत्तर प्रदेश के बुलंदशहर ज़िले के एक गांव में हुआ. बाबूजी राज्य सरकार के कर्मचारी थे. मां ने स्कूल का मुंह नहीं देखा था लेकिन बाबूजी की संगति में मां ने चिट्ठी पढ़ना-लिखना सीख लिया था. गांव में प्राथमिक स्तर की शिक्षा ही हो सकती थी. आगे की पढ़ाई के लिए गांव से आठ किलोमीटर दूर स्थित जूनियर हाईस्कूल में दाख़िला लिया. यहां पढ़ाई के साथ-साथ स्वावलंबन और कठोर अनुशासन का पाठ व्यावहारिक रूप से सीखने को मिला. स्कूल में अपनी बारी आने पर गोबर से लीपना, फुलवारी की सिंचाई करना, विद्यालय के निकट से बहती नदी को रस्सी के सहारे पार कर शिक्षकों द्वारा दिया गया पाठ याद कर वापस आना नियमित दिनचर्या थी.

बाबूजी को पढ़ने का शौक़ था, ऐसा मां बताती थीं. टीन के एक संदूक में गोदान, गबन, चंद्रकांता संतति जैसे बहुत से उपन्यास और कल्याण के अंक भरे पड़े थे जो बचपन में ही मैंने पढ़ डाले. बचपन से ही पढ़ने का भूत ऐसा सवार रहा कि अगली कक्षा की पुस्तकें हाथ में आते ही पढ़ लेता. जिस काग़ज़ की थैली में जलेबी अथवा कोई और खानें की चीज़ आती तो उसे खाने के बाद वह थैली फाड़कर उस पर छपा पढ़ा जाता. पढ़ने का क्रम अब भी ज़ारी है अलबत्ता अब काग़ज़ की थैलियां नहीं हैं.

मुझे याद है आठवीं कक्षा में फ़ीस माफ़ करवाने के लिए मां को बिना बताये दो पृष्ठों का आवेदन पत्र लिखा था. प्रधानाध्यापक 'सरोज' जी ने अपने कार्यालय में बुलाकर पूछा था कि वह आवेदन पत्र किसी से लिखवाया था क्या? मैंने संकोच के साथ बताया कि उसे स्वयं मैंने लिखा था तो स्नेह से सिर पर हाथ फेरते हुए उन्होंने शाबाशी दी और फ़ीस माफ़ी की सूचना भी. वे शिक्षक, वह विद्यालय और

वहां का माहौल अब भी पुलकित कर जाता है. गांव में प्रभात फेरी में शामिल होना, देशभक्ति के गीत गाना, अखाड़ों में कुश्ती देखने जाना, स्वांग, तमाशे, रामलीला, होली के गीत सुनना, देखना यह सब बहुत अच्छा लगता. तब का गांव के प्रति बना प्यार आज भी बार-बार गांव की ओर खींचकर ले जाता है.

आगे की पढ़ाई के लिए गांव से तीस कि.मी. दूर अलीगढ़ के धर्म समाज इंटर कॉलेज़ में प्रवेश लिया. केवल चौदह वर्ष की आयु में आठ रुपये महीने क़िराये की एक छोटी–सी कोठरी में रहना शुरू किया. अब तक आभास हो चुका था कि घर में आमदनी का कोई ज़रिया न होने के कारण मां न जाने कैसे हम सबका पालन करती होंगी.

बड़ी बहन केवल चौदह वर्ष की थीं कि उनका विवाह हो गया. गांव में हमारे चाचाजी ही घर–बाहर के हमारे सब काम किया करते थे. अनुशासन के बहुत कठोर थे. दो वर्ष के बाद मेरा छोटा भाई भी आगे की पढ़ाई के लिए अलीगढ़ आ गया. उसी कोठरी में रहते हुए हम दोनों भाइयों ने छोटे बच्चों को ट्यूशन पढ़ाना शुरू कर दिया और अपना ख़र्च स्वयं चलाने लगे.

मैं स्वयं पढ़ने में होशियार न था लेकिन अनुशासन और निरंतर कठोर परिश्रम का ऐसा पाठ पढ़ा जो जीवनभर काम आ रहा है. सबसे बड़ा भाई होने के नाते अतिरिक्त गंभीरता और ज़िम्मेदारी का अहसास बहुत जल्दी होने लगा था.

वर्ष १९६९ महात्मा गांधी जी का जन्म शताब्दी वर्ष पूरे देश में मनाया जा रहा था. तब मैं कक्षा ग्यारहवीं में था. ज़िला स्तर पर महात्मा गांधी के जीवन पर आयोजित निबंध प्रतियोगिता में द्वितीय स्थान प्राप्त किया. प्रधानाचार्य सी. पी. वैश्य ने सामूहिक प्रार्थना स्थल पर मुझे प्रमाण–पत्र और दो रुपये का नोट पुरस्कार के रूप में प्रदान किया.

विज्ञान विषयों के साथ इंटर मीडिएट परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद धर्मसमाज डिग्री कॉलेज़ में प्रवेश लिया. अब तक मां के संघर्ष और कठिनाइयों की अच्छी समझ हो चुकी थी. स्नातक स्तर पर विज्ञान विषय न लेकर बी. ए. में प्रवेश लिया. बी. ए. की कक्षाएं सुबह सात बजे से दस बजे तक लगती थीं. कला विषय लेने के पीछे मंशा थी कि कॉलेज़ के बाद कहीं कोई नौकरी की जाये ताकि भाई-बहन की पढ़ाई का ख़र्च निकल सके. मां, जिसने सपना देखा था कि बेटा इंज़ीनियर बनेगा, जब उन्हें पता चला कि बेटा बी. ए. की पढ़ाई कर रहा है तो थोड़ा दुखी ज़रूर हुई लेकिन मेरी भावना समझकर उन्हें संतोष हुआ.

१५ अगस्त १९५३
धर्मपुर, बुलन्दशहर (उ. प्र.)
एम. ए. (हिंदी, इतिहास, राजनीतिशास्त्र), एम. एड.

: लेखन :

हाल ही में कुछ कहानियां विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित, इसके अलावा कविता, लघुकथा, सामाजिक एवं शैक्षणिक लेख भी प्रकाशित.

: प्रकाशन :

'विधायक गुरु' एवं 'राष्ट्र आराधक' ग्रंथों का संपादन.

: संप्रति :

'कथाबिंब' में संपादन सहयोग.
प्रधानाचार्य के पद से सेवा निवृत्ति के बाद स्वतंत्र लेखन.

यूं कहने को तो पुरुषों को उनकी दृढ़ता और पक्के इरादों के लिए लौह पुरुष कहा जाता है लेकिन मैं अपनी मां को लौह महिला कहूं तो अन्यथा नहीं होगा. केवल अट्ठाईस वर्ष की आयु में विधवा होना, पांच संतानों का पालन-पोषण करना, उन्हें निरंतर अच्छा इंसान बनने की राह दिखाते रहना बड़ा जीवट का काम था. आज तिरसठ वर्ष की आयु में यह लिखते हुए सोचकर विस्मित हूं कि मां ने अपनी कितनी और कैसी-कैसी इच्छाओं का दमन किया होगा! कैसे सब उत्तरदायित्व निर्वाह किये होंगे! विषम परिस्थितियों में संघर्ष करना हम भाइयों और बहनों ने मां से सीखा.

पहली नौकरी मुझे तांबा-पीतल की एक दूकान पर मिली. संयोग से वह दूकान एक निजी बैंकर की थी. यह जानकर कि मैं बी. ए. में पढ़ रहा हूं उन्होंने मुझे अपने बैंक में बतौर क्लर्क रख लिया. तनख़्वाह तय हुई पच्चासी रुपये प्रतिमाह. प्रति दिन घर जाकर मैं दो रुपये पच्चासी पैसे के हिसाब से अपने जमा होते जाते वेतन का जोड़ करता.

अब तक गुलशन नंदा और कर्नल रंजीत के अनेक

उपन्यास पढ़ चुका था. फ़िल्मी पैरोडी पर गीत बनाकर मैं और मेरा भाई गांव जाने पर सबको सुनाते. बड़ा अच्छा लगता. बैंकर के यहां आगे कुछ सीखने को नहीं मिल रहा था सो वह नौकरी छोड़ दी और उतने ही वेतन पर एक आयुर्वेदिक दवा कंपनी में टाइपिस्ट क्लर्क की नौकरी शुरू की. कॉलेज़, नौकरी और ट्यूशन का क्रम चलता रहा. मेरे छोटे भाइयों ने इस संघर्ष में पूरा साथ दिया.

गुलशन नंदा के उपन्यासों का कुछ ऐसा असर पड़ा कि बी. ए. द्वितीय वर्ष की पढ़ाई के साथ-साथ मैंने और बी. एस–सी. की पढ़ाई कर रहे छोटे भाई ने मिलकर एक उपन्यास ही लिख डाला. 'बदनसीब' शीर्षक के उपन्यास के लेखक के रूप में संयुक्त नाम 'अशोकानंद' रखा गया. समय निकालकर हम दोनों भाई उपन्यास के कथ्य पर विचार करते, घटनाओं की कल्पना करते और संवाद मैं लिखता. उपन्यास लेखन की बात हमने किसी को नहीं बतायी. डर था कि मां की डांट पड़ेगी. आज भी वह प्रथम पांडुलिपि सुरक्षित है लेकिन अब बहुत बचकानी लगती है.

वर्ष १९७५ में आपातकाल लागू होने के कारण देश कठिनाइयों के दौर से गुज़रने लगा था. मेरे लिए भी वह वर्ष चुनौतियों से भरा रहा. बी. ए. का अंतिम वर्ष. सिर पर परीक्षाएं थीं कि पीलिया रोग बढ़ जाने के कारण अस्पताल में भर्ती होना पड़ा. छोटी बहन का विवाह उसी दिन का तय हुआ जिस दिन मेरी अंग्रेज़ी की अंतिम परीक्षा थी. ज़बरन अस्पताल से छुट्टी ली. मां के साथ मिलकर बहन के विवाह का इंतज़ाम करवाया और परीक्षा भी दी. मां ने विवाह के ख़र्च के लिए अपने सब ज़ेवर बेच दिये. पहली बार मां को रोते देखा.

बी. ए. उत्तीर्ण होने के बाद एम. ए. अर्थशास्त्र में प्रवेश लिया. छोटा भाई लखनऊ में एल. टी. करने चला गया. मुंबई में हमारे छोटे चाचाजी शिक्षक थे. उन्हें एक पत्र लिखा. पत्र में लिखी बातों से प्रभावित होकर उन्होंने मुंबई आकर बी. एड. करने को कहा. उत्साह दोगुना हो गया. लेकिन मुंबई आने-जाने का ख़र्च, बी. एड. की फ़ीस आदि का सोचकर मायूसी ने घेर लिया. लेकिन 'जहां चाह वहां राह' की बात चरितार्थ हुई और उसी आयुर्वेदिक दवा कंपनी के कार्यालय में पिछले तीन साल के लैज़र-कैशबुक की जांच करने का अतिरिक्त काम मिल गया जिसे रातों को कार्यालय में रहकर पूरा किया और इस प्रकार तीन सौ रुपये मिले. कुछ रुपये अपनी दादी से उधार लिये और मार्च १९७६ में दिल्ली से जनता एक्सप्रेस में मुंबई के लिए रवाना हुआ. तब बिना आरक्षण के ४७ रुपये किराया था.

बी. एड. में प्रवेश लेने के बाद गांव वापस गया. तो पूरे गांव में चर्चा हुई कि देखो बच्चे कितने अच्छे निकले. आज सोचता हूं तो हंसी आती है. मां ने कॉलेज़ के लिए मुझे एक खाक़ी पैंट और सफ़ेद शर्ट सिलवा कर दी तथा पत्रकारों जैसा खादी का एक थैला ख़रीदकर दिया. चलते समय एक छोटी डायरी भी दी और कहा कि मैं डायरी में अच्छी-अच्छी बातें लिखूं.

बी. एड. के दौरान जीवन की पहली कविता लिखी. पंक्तियां कुछ इस प्रकार थीं -

'सुख करते निष्क्रिय हमको,
दुख नित्य नयी चेष्टा सिखलाते.
सुमन बिछे पथ भटकाते,
कंटकमय पथ नव राह दिखाते.'

और भी बहुत सी कविताएं लिखीं जो दुख और संघर्ष पर आधारित थीं. कॉलेज़ की पत्रिका के हिंदी विभाग का संपादन भी किया.

प्रथम श्रेणी में बी. एड. उत्तीर्ण करने के तुरंत बाद मुंबई की महान शिक्षण संस्था विवेकानंद एजूकेशन सोसायटी द्वारा संचालित स्वामी विवेकानंद कनिष्ठ महाविद्यालय में शिक्षक के पद पर नियुक्ति हुई. पहला वेतन था पांच सौ सत्तरह रुपये. यह जुलाई १९७७ की बात है और इस प्रकार स्थायी रूप से मुंबई कार्यस्थली बन गयी.

मेरे जीवन का नया अध्याय शुरू हुआ. शिक्षण के साथ-साथ संस्था की सांस्कृतिक गतिविधियों में रुचि लेने लगा. विद्यालय के वार्षिक उत्सव के लिए बहुत से नाटक लिखे जिनका सफल मंचन हुआ. संस्था के ही मंच पर जीवन में पहली बार स्वरचित कविता पाठ करने का अवसर मिला. मेरी अधिकांश कविताएं व्यंग्यात्मक होती थीं. ऐसे ही एक कार्यक्रम में संस्था की व्यवस्था पर ही व्यंग्य कविता सुना डाली. दो दिन बाद संस्था के अध्यक्ष वाधवानी जी ने बुलाकर कहा 'लिखते तो अच्छा हो लेकिन ये हल्की बातें छोड़कर कुछ सार्थक लिखो.' बात मन को अच्छी लगी.

नौकरी लगे दो वर्ष हो चुके थे. मां शादी के लिए ज़ोर डालने लगी थीं. अंततः मई १९७९ में विवाह हो गया. विवाह से पूर्व हम पति-पत्नी ने एक दूसरे को देखा

नहीं था. फ़ोटो तक का आदान-प्रदान नहीं हुआ था. मेरा इतना ही कहना था कि लड़की ग्रेजुएट होनी चाहिए. 'हेम जी' उस समय बी. ए. फ़ाइनल कर रही थीं. विवाह से पूर्व उस अनदेखी लड़की के नाम एक डायरी पूरी भर दी थी जिसमें अपने परिवार का परिचय, अपनी कमियां और अपने भविष्य के सपने लिखे थे. प्रथम मिलन के अवसर पर वह डायरी पत्नी को भेंट की. अब तक उस डायरी को अनेक बार मिलकर पढ़ा जा चुका है. हेम जी इस भेंट को संभालकर अपनी अल्मारी के लॉकर में रखती हैं.

गांव से मेरा छोटा भाई मुंबई आकर बी. एड. करने के बाद यहीं शिक्षक बन गया. एक कमरा और रसोई वाले क़िराये के मकान में हम रहने लगे. पत्नी कभी-कभी गांव मां के पास चली जातीं. विवाह के बाद पांच वर्ष के भीतर एक पुत्र और एक पुत्री परिवार के नये सदस्य बन गये.

इस बीच नवभारत टाइम्स में 'पाठकों की चिट्ठियां' कॉलम में मेरी चिट्ठियां छपने लगी थीं. एक-दो कविताएं अलीगढ़ से निकलने वाले समाचारपत्रों में प्रकाशित हुईं. मन में लेखन के प्रति रुझान पनप रहा था लेकिन घर-गृहस्थी, नौकरी, ट्यूशन ने व्यस्त कर रखा था.

१४ फरवरी १९८७ को जीवन का सबसे बड़ा आघात लगा. मुंबई में ही एक सड़क दुर्घटना में मेरी मां चल बसीं. तब मां की उम्र केवल पचपन वर्ष की थी. यह हम सबके लिए अपूरित क्षति थी. काल पर किसका वश चला है? तनाव अथवा संकट की घड़ियों में मां सपनों में आती हैं और अपने कठोर चेहरे पर वात्सल्य की मुस्कान बिखेरकर जैसे आशीर्वाद दे जाती हैं.

अब तक विद्यालय और संस्था की समस्त सांस्कृतिक गतिविधियों में मेरी अग्रणी भूमिका तय हो चुकी थी. बहुत से नाटक लिखे जिनका विद्यालय और कॉलेज़ स्तर पर सफल मंचन हुआ. संस्था के मंच पर कविताओं का पाठ आम बात हो गयी थी. संस्था की पत्रिका 'विवेक' के संपादन कार्य में भी भूमिका बढ़ती जा रही थी.

पत्नी हेम ने बी. एड. कर लिया था और पढ़ाने लगीं लेकिन बच्चों और परिवार की ख़ातिर उन्हें अपनी नौकरी छोड़नी पड़ी.

विवेकानंद इंजीनियरिंग कॉलेज़ की निदेशिका डॉ. कु. मिथिलेश सक्सेना ने नाटक लेखन, मंच संचालन और अन्य सांस्कृतिक गतिविधियों में आगे बढ़ने में न केवल उत्साहवर्धन किया बल्कि अवसर भी दिये. संस्था की सांस्कृतिक शाखा 'विवेकिनी' का मैं मुख्य मंच संचालक बन गया. अनेक साहित्यिक, सांस्कृतिक और शास्त्रीय नृत्य-संगीत के कार्यक्रमों का मंच संचालन किया. समाज में पहचान बढ़ने लगी.

डॉ. मिथिलेश सक्सेना ने ऐसे ही एक कार्यक्रम में मुंबई के प्रथम हिंदी सांध्य दैनिक 'निर्भय पथिक' के संपादक अश्विनीकुमार मिश्रा से परिचय करवाया. यह परिचय आगे चलकर मित्रता और पारिवारिक संबधों में परिवर्तित हुआ. मिश्रा जी ने अपने समाचार पत्र के लिए लिखने को प्रोत्साहित किया. मेरे द्वारा भेजे गये समाचार अख़बार में छपने लगे. शिक्षा, साहित्य और समाज के विभिन्न मुद्दों पर भी लेख छपने लगे. 'निर्भय पथिक' के कई साप्ताहिक स्तंभों के लिए नियमित लिखने लगा. नवभारत टाइम्स और जनसत्ता में भी लेख प्रकाशित होने लगे.

जनवरी १९९७ से 'निर्भय पथिक' के स्थायी स्तंभ 'खरी-खरी' लिखने की ज़िम्मेदारी संभाली. सामयिक विषयों पर छः पंक्तियों में व्यंग्य लहज़े में एक कविता लिखनी होती थी. यह स्तंभ पिछले २० वर्षों से मैं लिखता आ रहा हूं. 'खरी-खरी' के चलते पहचान का दायरा बढ़ा.

बालासाहेब ठाकरे के हिंदी सांध्य दैनिक 'दोपहर का सामना' के लिए एक वर्ष तक 'सामना आदर्श प्रश्न-पत्र' और बाद में 'सामना कॅरिअर गाइड' स्तंभ भी पूरा किया. तब संजय निरुपम कार्यकारी संपादक थे. लेखन से होने वाली अतिरिक्त आमदनी बड़ा सुकून देती.

वर्ष १९९६ के आम चुनाव के दौर में संयोगवश मुंबई के एक बड़े हिस्से में केबल टी. वी. नेटवर्क वाली कंपनी 'भवानी केबल टी. वी. नेटवर्क' (बी. टी. वी.) के साथ जुड़ना हुआ. उस समय उन्हें हिंदी में समाचार लिखने वाले की ज़रूरत थी. फिर तो समाचार लिखना, नेताओं के साक्षात्कार लेना और कार्यक्रम 'जनमंच' प्रस्तुत करना नियमित काम होने लगा. काम में आनंद आने लगा. चैनल के लिए प्रातः कालीन और सायंकालीन समाचार प्रस्तुत करने का उत्तरदायित्व भी कई वर्षों तक निभाया.

मेरा मानना है कि कितनी ही बाधाएं हों, रास्ते कितने ही कठिन हों, यदि आप में हौसला है, दृढ़ इच्छाशक्ति है और निरंतर आगे बढ़ते रहने की ललक है तो पर्वत भी आपको रास्ता सहर्ष देंगे. संभवतया इसी भाव के संचार के रहते ऐसा दोहा जन्म लेता है —

अगर बीज में जान हो, कहीं दीजिए गाढ़ ।
कोमल अंकुर बढ़ चले, पक्की धरती फाड़ ।।

कॉलेज़, ट्यूशन और चैनल के काम ने व्यस्तता इतनी बढ़ा दी कि अठारह से बीस घंटे प्रतिदिन काम करना पड़ता. इसी दौरान हिंदी, राजनीतिशास्त्र और इतिहास में एम. ए. किया तथा बाद में एम. एड. भी किया. बी. टी. वी. के साथ मैं क़रीब चौदह वर्षों तक जुड़ा रहा.

मेरे साथ जूनियर कॉलेज़ में श्रीमती मंजु सक्सेना अर्थशास्त्र की प्रवक्ता थीं. मंजु जी 'कथाबिंब' की संपादिका भी हैं. धीरे-धीरे 'कथाबिंब' के प्रधान संपादक डॉ. माधव सक्सेना 'अरविंद' जी से संपर्क बढ़ता गया. कुछ कविताएं और लघुकथाएं कथाबिंब में प्रकाशित हुईं.

नियमित लेखन तब भी नहीं हो पा रहा था. हां, अख़बार के लिए 'खरी-खरी' अब भी लिखी जा रही है. इस बीच 'विधायक गुरू' और 'राष्ट्र आराधक' इन दो ग्रंथों का संपादन करने का सुअवसर मिला. कार्य की सराहना हुई. कई वर्षों तक विद्यालय की पत्रिका का संपादन किया. माधव सक्सेना जी ने 'कथाबिंब' की संपादकीय टीम में शामिल कर लिया, साथ ही कहानी लेखन के लिए प्रोत्साहित किया. अब तक कई कहानियां लिख चुका था लेकिन संकोचवश कहीं भेजी नहीं थीं.

वर्ष २००७ के अक्तूबर महीने में मुझे कॉलेज़ के प्रधानाचार्य पद पर पदोन्नति मिल गयी. व्यस्तता और बढ़ गयी. वर्ष २००७ मेरे लिए बहुत शुभ रहा. मैं प्रधानाचार्य बना, नवी मुंबई स्थित नये मकान में रहना शुरू किया, बेटा गौरव इसी वर्ष में सी. ए. बना तथा बेटी सुप्रिया इसी वर्ष

रिश्तों के दोहे

✍ अशोक वशिष्ठ

रिश्तों में होने लगा, है अब तो व्यापार ।
जिससे जब मतलब पड़े, उससे पनपे प्यार ।।

बंटवारे में खिंच गयी, घर-आंगन दीवार ।
तुलसी का चौरा कहे, मैं जाऊं किस द्वार ।।

सोना-चांदी बंट गये, बंटे खेत खलिहान ।
मां-बापू के नाम से, हो रही खींचातान ।।

रिश्तों को लग गया, जैसे कोई शाप।
छः-छः महीनों के लिए, बंट रहे माई-बाप ।।

कितनी मन्नत से मिली, थी एक-दो संतान ।
दो रोटी देकर करें, जैसे कि एहसान ।।

हाय बुढ़ापा हो गया, है कितना मजबूर ।
अपने बेगाने हुए, हुआ ज़माना क्रूर ।।

अंत समय में एक भी, न पहुंची संतान ।
चार पड़ोसी ले गये, बापू को श्मशान ।।

खरी-खरी

✍ अशोक वशिष्ठ

(१)

पैसा बिन या जगत में, जीवन है बेकार ।
पैसा हो यदि जेब में, बन जाते सब यार ।।
बन जाते सब यार, बिगड़ते काम बनाता ।
कैसे-कैसे काम, यहां पैसा करवाता ।।
यहां कोई बलवान, नहीं है पैसे जैसा ।
सभी नवाते शीश, पास में हो यदि पैसा ।।

(२)

रोटी छोटी हो रही, अरु पतली है दाल ।
महंगाई ने कर दिया, हाल बड़ा बेहाल ।।
हाल बड़ा बेहाल, बनी सुरसा महंगाई ।
जेबें हो रही तंग, न पूरी पड़े कमाई ।।
जीवन यापन आज, मुसीबत रही न छोटी ।
सपने में भी रोज, चिढ़ाती दाल व रोटी ।।

डॉक्टर बनी. फरवरी २००८ में बेटी का विवाह हुआ. वर्ष २०११ अक्तूबर में प्रधानाचार्य के पद से सेवानिवृत्त होना था. इससे पहले ही जून में पुत्र का विवाह संपन्न हुआ. इन सब उत्तरदायित्वों का निर्वाह करते हुए और कॉलेज़ को लगातार ३४ वर्षों तक समर्पित सेवाएं देने के बाद अक्तूबर २०११ में मैं सेवा निवृत्त हुआ.

अब समय ही समय था. उत्तर प्रदेश स्थित अपने गांव जाकर पैतृक मकान को फिर से बनवाया. इस उद्देश्य से गांव में लंबे समय के लिए रहने का अवसर मिला और यहीं से नियमित कहानी लेखन शुरू हुआ. मुझे लगने लगा कि गांव की पृष्ठभूमि पर कहानी लेखन में मुझे सहजता का अहसास होता है. पहली लंबी कहानी 'मुंसी ताऊ' 'कथाबिंब' के अप्रैल-जून २०१२ के अंक में प्रकाशित हुई. अच्छी प्रतिक्रियाएं मिलीं. इसके बाद 'सूखी तोरई' कहानी उत्तर प्रदेश के बुलंदशहर से निकलनेवाली साहित्यिक पत्रिका 'बुलंदप्रभा' में प्रकाशित हुई. 'संतों की लाड़ो का ब्याह' को कथाबिंब के अक्तूबर-दिसंबर २०१३ अंक में स्थान मिला और कहानी लेखन और उनके प्रकाशित होने का सिलसिला चल पड़ा. कविताएं भी नियमित लिखी जा रही हैं.

'निर्भय पथिक' के संपादक अश्विनीकुमार मिश्रा से मिले उत्साहवर्धन के बाद 'खरी-खरी' के संकलन को प्रकाशित करवाने की तैयारियां अपने अंतिम चरण में हैं. साथ ही कहानियों के संकलन-प्रकाशन का काम भी चल रहा है. सोशल मीडिया का ज़माना है. पिछले तीन वर्षों से फ़ेसबुक पर प्रतिदिन 'खरी-खरी' रचना एवं अन्य रचनाएं अंकित कर रहा हूं. पहचान मिल रही है. कुछ काव्यमंचों पर नियमित भागीदारी हो रही है. अब तक 'मुक्तक रत्न सम्मान', 'काव्य गौरव सम्मान', 'शीर्षक शिरोमणि' सम्मान तथा युवा उत्कर्ष साहित्य मंच का 'शीर्षक शिरोमणि' सम्मान प्राप्त हो चुके हैं.

ईश्वर की कृपा से स्वास्थ्य अच्छा बना हुआ है. गांव का आकर्षण बढ़ता जा रहा है. गांव आना-जाना लगा रहता है. विभिन्न मंचों पर और काव्यगोष्ठियों में कविता पाठ का क्रम ज़ारी है. पुस्तकें पढ़ने का भूत अब भी सवार हैं. नियमित लिख रहा हूं. पत्नी के साथ देश भर में घूमने का मन हैं.

आज यह आत्मवृतांत लिखते हुए अपने जीवन के बीते पलों को फिर से जीने का अवसर मिला. बचपन को याद कर खिलखिलाया, मां को याद कर रोया, संघर्ष के पलों को जीकर आत्मबल बढ़ा और भविष्य को लेकर नियोजन किया. आदरणीय माधव सक्सेना जी से सृजन के लिए निरंतर उत्साहवर्धन प्राप्त हो रहा है जिसके लिए मैं आभार व्यक्त करता हूं.

अंत में कुछ पंक्तियां याद आ रही हैं —

'अभी तो बाज़ की असली उड़ान बाक़ी है,
इस परिंदे का अभी इम्तिहान बाक़ी है,
अभी तो इसने सिर्फ़ पर्वतों को छुआ है,
अभी तो छूने को एक आसमान बाक़ी है.'

✆ *सी-६०३, सागर रेसीडेंसी सेक्टर-२७, नेरुल (पूर्व), नवी मुंबई-४०० ७०६, मो. ९८६९३३७६१८*

लघुकथा

चरण चिरौरी

✍ *सुरेश कुशवाहा 'तन्मय'*

वह कुत्ता भूख के मारे एक घर के दरवाज़े पर रोटी मिलने की उम्मीद में अपनी पूरी शक्ति लगा कर भौंकता जा रहा था. परेशान हो गृह स्वामी ने बाहर निकल कर लकड़ी से उसकी जमकर पिटाई कर दी.

लड़खड़ाते लंगड़ाते वह दूसरे घर के सामने अनमना हो कर बैठ गया. गेट के अंदर से उसका स्वजातीय दूसरा कुत्ता उस पर दया भाव दिखाते हुए उसे सफलता के कुछ महत्वपूर्ण सूत्र समझाने लगा.

'मित्र, आदमी के सामने सिर्फ़ भौंकने से कुछ भी हासिल नहीं होना है. इनसे कुछ पाना चाहते हो तो तुम्हें इनके चरण चाटने और पूंछ हिलाने की चाटुकारी कला सीखना बहुत ज़रूरी है. यदि तू इनमें पारंगत हो गया तो मुझे देख, मेरे जैसा तू भी मजे करेगा.'

कुछ दिनों बाद वह कुत्ता उसी पहले वाले घर में उस गृहस्वामी के सामने बैठ कर बड़े मजे से दूध ब्रेड खा रहा था, जिसके हाथों कुछ दिन पहले जम कर मार खायी थी.

✆ *२२६, मां नर्मदे नगर, बिलहरी, जबलपुर-४८२०२०(म. प्र.) मो. : ९८९३२६६०१४.*

सागर/सीपी

'मीडिया को स्थानीयता की रक्षा करना चाहिए.'

✍ डॉ. क्षमा शर्मा

('कथाबिंब' के लिए पत्रकार क्षमा शर्मा से मधु अरोड़ा की बातचीत.)

◈आप अपने प्रारंभिक बचपन की कोई प्रेरणादायक घटना पाठकों से शेअर करें.

१९७५ की बात है, तब मैं बी. ए. में पढ़ती थी. हम छुट्टियों में गांव जाया करते थे. उन दिनों गांव में किसी किसी के घर में ही रेडियो होता था. गांव के घर में रेडियो होना सुशिक्षित होने की निशानी मानी जाती थी. हमारे घर में भी एक बड़ा–सा रेडियो था. जो बीच वाले भाई की शादी में मिला था. अक़्सर उस पर ख़बरें सुनी जाती थीं. घर में बहुत ग़रीबी थी. एक तरह से जीवन में अंधकार. यह पता ही नहीं था कि आगे क्या करना है. एक दोपहर ख़बर में सुना...वह २६ जून की बात है...जिस दिन देश में इमर्जेन्सी लगी थी. उसी दिन यह ख़बर सुनी कि यह वर्ष (१९७५) अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष होगा. मैं स्त्री–विमर्श नहीं जानती थी, पर लड़की होने के नाते आसपास जो घटनाएं घटती थीं, वे मन पर बहुत बुरा प्रभाव डालती थीं. लड़कियों के लिए गांव, कस्बे भारी-भरकम जेल होते थे. मुझे न जाने क्या सूझा कि रज़िस्टर के पन्ने फाड़े और कच्ची-पक्की राइटिंग में औरतों के बारे में लेख लिखा...'अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष एक और विकल्प'. एक पुराना 'अमर उजाला' अख़बार पड़ा था, उससे पता खोजकर २५ पैसे के टिकटवाले लिफ़ाफ़े में रखकर लेख भेज दिया. उन दिनों यह पेपर आगरा से निकलता था. दो-तीन दिन बाद जीजाजी घर पर आये. बोले- 'गुड़िया, तुमने कोई लेख लिखा था?' मैंने शर्माकर 'हां' कहा तो उन्होंने बताया कि आज इस अमर उजाला में छपा है. कहते हुए उन्होंने अख़बार मुझे पकड़ा दिया. मुझे उस समय जो महसूस हुआ, उसे कहने को शब्द नहीं हैं मेरे पास. न कोई जान न पहचान और पहला लेख संपादकीय पेज़ पर छपा. पहले घरवालों को विश्वास नहीं हुआ. फिर उनकी ख़ुशी का ठिकाना न रहा. उस अख़बार को बाहर के कमरे में रख दिया गया और घर में जो आता मां उसे दिखाती. इसलिए यदि कहूं कि मेरे लेखक/पत्रकार बनने में 'अमर उजाला' अख़बार ने प्रमुख भूमिका निभायी.

वह एक ऐसी शुरुआत थी कि लेखन में दिलचस्पी हो गयी और गांव में उस पेपर को पहले कमरे में सजा दिया और सबको दिखाया गया. कैटलिस्ट (उत्प्रेरक) की भूमिका वहां से मिली और घर का माहौल तो था ही. आमतौर पर लड़कियों को घर से शिकायत होती है कि उन्हें अपने ही घर में दोयम दर्जे का नागरिक माना जाता है. लेकिन हमें दोयम नहीं माना गया. न किसी से बोलने बातचीत करने पर पाबंदी लगायी गयी. बल्कि अगर कोई पत्र लिख देता था तो उसे सबको पढ़वाया जाता था. एक बार तो एक लड़के ने मंदिर पर मिलने बुलाया तो मुझे तो आगे भेज दिया गया. पीछे से मां, बहनों, भाभियों की फौज यह तय करके आयी कि आज चप्पलों से अच्छी तरह उसकी ख़बर लेंगे. मगर शायद वह लड़का दूर से देख रहा होगा तो उसके दर्शन नहीं हुए.

◈आप पत्रकारिता में आने से पूर्व कहां सेवारत थीं?

मैं बीस वर्ष की थी, तभी नौकरी में आ गयी थी. उससे पहले रेडियों के युववाणी कार्यक्रम में भाग लेती थी. अख़बारों, जैसे कि नवभारत टाइम्स, हिंदुस्तान, अमर उजाला, समाज कल्याण, आजकल आदि पत्रिकाओं में लिखती थी. तब रेडियो एक कार्यक्रम के पंद्रह रुपये देता था और वे पंद्रह रुपये पूरे महीने के लिए काफ़ी होते थे. १९७७ में जब मैंने नौकरी शुरू की उस समय ४०० रु. मिलते थे. वे रुपये बहुत थे. चाहे जितना ख़र्च करूं सौ रुपये से ज़्यादा ख़र्च नहीं होते थे. तीन साल पहले मेरे दफ़्तर में एच. आर. ने एक मीटिंग में बुलाया था. उसमें यंग्स्टर्स को मैंने चालीस साल पहले हाथ में होने वाले एक रुपये का ब्रेकअप बताया था. जिसमें बस का दोनों तरफ़ का किराया, बाहर का

खाना, चाय, पान आदि खाकर भी दस या बीस पैसे बच जाते थे. मैंने यह भी बताया कि मुझे बनाने में इस दिल्ली शहर की बहुत बड़ी भूमिका रही है. कस्बे और गांव को लोग बहुत आदर्श की तरह दिखाते हैं मगर लड़कियों के लिए वे किसी कालकोठरी से कम नहीं होते. आमतौर पर साहित्यकार लोग गांव और छोटे शहरों को बहुत आदर्शीकृत करते हैं. और इस शहर को आत्महत्या का शहर कहते हैं. लेकिन शहर ने मुझे सारे सवालों के उत्तर दिये. आश्चर्य होता है कि ज़िंदगी में जितने पुरुष मुझे मिले, अधिकांश अच्छे मिले... पिता, बड़े भाई, पति...जिन्होंने मेरे घर से मिठाई का एक डिब्बा तक नहीं लिया. आज तक हम दोनों ने किसी से कुछ नहीं लिया. मेरे पति ने तो कभी मेरे घर वालों से चाय तक नहीं मांगी. दफ़्तर में श्री जयप्रकाश भारती मेरे बॉस थे. वे मुझे बेटी की तरह मानते थे. फरवरी में मैंने ज़्वाइन किया था. अप्रैल में मेरे एम. ए. के एग्ज़ाम थे. समझ में नहीं आ रहा था कि इम्तिहान कैसे दूं. छुट्टी मिल नहीं सकती थी. मैंने भारती जी से जाकर कहा. वह बोले, 'नौकरी के लिए एम्ज़ाम क्या नहीं दोगी?

'एग्ज़ाम देकर दो बजे ऑफ़िस आ जाया करो? यह एक लड़की को इम्पॉवर करने में एक पुरुष का योगदान था और मुझे एम. ए. में ६६ प्रतिशत नंबर मिले थे. विश्वास इतना बढ़ा कि नौकरी में हिचक नहीं रही. उनकी कृतज्ञता व्यक्त करने मैंने कभी कोई क़ोताही नहीं बरती. हिंदुस्तान टाइम्स एक बहुत अच्छा ऑर्गनाइज़ेशन था और है. वहां उस समय आर्य समाज ट्रेडीशन के लोग थे, वे चाहते थे कि मैं आगे बढ़ूं. उस समय विद्यासागर जी थे, क्षितीश जी थे. शरदेंदु जी थे. एक्ज़ीक्यूटिव प्रेसीडेंट नरेश मोहन लड़कियों के ज़बदस्त पक्षधर थे और उनके होने से लड़कियां बहुत सुरक्षित महसूस करती थीं. उन दिनों दफ़्तरों में सेक्सुअल हैरेसमेंट कमेटियां नहीं थीं.

◈आज की पत्रकारिता के विषय में आपका क्या कहना है ?

कोई भी अख़बार 'कॉस्ट इफ़ेक्टिव' होना चाहिए. कैसे होगा? जब रेवेन्यू कमायेगा यदि रेवेन्यू आता है और ख़र्च के साथ लाभ भी हो सकता है, तभी पाठकों तक पहुंचेगा. यह चैरिटी नहीं है. कोई व्यावसायिक संस्थान बिना मुनाफ़े के आख़िर अख़बार से घाटा उठाकर फ्री क्या देगा? अख़बार पाठकों तक तब पहुंचेगा, जब वह सस्ता होगा और

जन्म : अक़्तूबर, १९६५

शिक्षा : एम. ए., पी. जी. डिप्लोमा....जर्नलिज़्म एवं पीएच. डी.

: प्रकाशन :

१२ कहानी संग्रह, ४ उपन्यास, ४ स्त्री विमर्श की पुस्तकें, १ पत्रकारिता की पुस्तक, ४० से अधिक बच्चों पर पुस्तकें, नेशनल बुक ट्रस्ट, प्रकाशन विभाग, दिल्ली से प्रकाशित.

: कार्य अनुभव :

३७ साल तक हिंदुस्तान टाइम्स, अंतिम पद...नंदन पत्रिका का कार्यकारी संपादन/ वर्तमान में सांस्कृतिक मंत्रालय की सीनियर फ़ैलो एवं रेडियो में सीनियर आर्टिस्ट, टी. वी पर कार्यक्रम, हज़ारों लेखों का लेखन.

: सम्मान :

आई. बी. एम. प्रथम लेखक पुरस्कार, भारतेंदु हरिश्चंद्र पुरस्कार, तीन बार हिंदी साहित्य अकादमी सम्मान, पूरे भारत में पुस्तकों पर रिसर्च और एम. फिल. हुई हैं और यह कार्य लड़कियों द्वारा किया गया है.

: संपर्क :

१७/८१, हिंदुस्तान टाइम्स अपार्टमेंट्स, मयूर विहार, फेज़-१, दिल्ली-११००९१. मो.: ९८१८२५८८२२.

ई-मेल : kshamasharma1@gmail.com

उसके लिए विज्ञापनों की कमाई ज़रूरी है. वक़्त के साथ सब बदलता है. पराड़कर के ज़माने में या 'उत्तंड मार्तंड' के ज़माने में भी बिना मुनाफ़े के नहीं रह सकते थे. पेड न्यूज़ पहले भी थीं. अब हम अख़बारों को दोष नहीं दे सकते. यदि वे ऐसा न करें तो न वेतन दे सकते हैं और न अख़बार बेच सकते हैं. पाकिस्तान में पेपर २५-३० रुपये का मिलता है. कौन पढ़ सकता है. आज़ादी के दिनों में घर- घर जाकर एक एक रुपये में अख़बार बेचते थे.

इसका एक दूसरा पक्ष भी है अख़बार अपनी सामाजिक ज़िम्मेदारी का ख़्याल रखें. कमाने के चक्कर में वे सोचते हैं

कि किसी को नाराज़ न करें अपने रेवेन्यू को कोई नहीं खोना चाहता. तीसरा पक्ष... राजनैतिक दल इस बात से डरते हैं कि वे धर्म और रूढ़िवादिता के खिलाफ़ बोलेंगे तो वोट नहीं मिलेंगे. इसलिए कट्टर पंथ के समर्थक हैं. अख़बार भी नहीं बोलते क्योंकि सर्क्यूलेशन व विज्ञापन कम न हो. इसलिए हमें किसी की आलोचना नहीं करना चाहिए. चौथा पक्ष... मीडिया को स्थानीयता की रक्षा करना चाहिए. लोकल, ग्लोबल सब एक हो गया है. ब्रांड कॉमन हो गये हैं. गांव के और शहर के तौर तरीक़े एक हो गये हैं. हमारे देश की ख़ूबसूरती इसकी हर जगह की स्थानीयता में है मगर आज वेशभूषा और रहने-सहन एक जैसे दिखते हैं. इसे ही आदर्श की तरह से पेश किया जाता है. कपड़ा, खान-पान, रहन-सहन की बहुविधिता ख़त्म होती जा रही है. सब जगह एकरूपता दिखती है. लड़कियों की वेस्टर्न छवियों को सशक्तिकृत लड़की की छवि बना दिया गया है और यह बहुत बोरिंग छवि है. यदि इस छवि को स्वीकार करें तो अमेरिका और विदेशों की सभी महिलाएं इम्पॉवर्ड मानी जानी चाहिए. वे घरेलू हिंसा व रेप की शिकार हैं. हील्स पहननेवाली महिला इम्पॉवर्ड है और लड़की की इस छवि को मीडिया के जरिए विज्ञापित किया जाता है.

◈स्त्री-विमर्श के रूप में दांपत्य जीवन के एक ही पहलू पर बात क्यों होती है?

स्त्री का इम्पॉवरमेंट अपने प्रोडक्टस को बेचने का साधन बना दिया गया है और इसीलिए सताई स्त्री को बरबस एक सुविधा संपन्न स्त्री दिखायी जाती है.. वह सशक्त है. यह इम्पॉवरमेंट पति के बरक्स होता है. भाई, पिता के विरुद्ध होता है. पति इतना ख़राब है तो शादी क्यों करते हैं. लिव-इन में रह लें. लड़की की इम्पॉवरमेंट छवि है और वही लड़की हाथों में मेहंदी रचाये करवा चौथ मनाती है. जितना इस व्रत का गान हुआ है, उतनी ही शादियां टूट रही हैं.

मैं जब बच्ची थी. शादी में सायकिल बड़ी चीज़ मानी जाती थी और आज मर्सिडीज़ से भी काम नहीं होता. तब दावत में पूड़ी, सब्ज़ी, लड्डू व दही काफ़ी था. आज तो अन्न की बर्बादी ही होती है. दहेज से सताई स्त्री को न्याय नहीं मिलता, पर आजकल बहुत से चालाक लोग इस क़ानून का दुरुपयोग करके निरपराध लोगों को पकड़वाकर लाखों रुपये वसूलते हैं. औरतों की भलाई के लिए बनाया गया क़ानून उन्हें ही सता रहा है. इससे यदि महिलाएं बचतीं तो बहुत अच्छा था. 'सेव इंडियन फ़ैमिली' नाम से एक संगठन है जिसे 'सिफ़ी' कहते हैं. सर्वे में बताया गया कि हर २१वें मिनट में एक औरत पकड़ी जाती है. बहू व उसके घरवाले देव हैं और लड़केवाले हमेशा दानव होते हैं.

◈आप लिव-इन रिलेशनशिप परंपरा को किस रूप में देखती हैं?

मैं इसे ख़राब नहीं मानती. चक्कर यह है कि इससे लड़कियों का नुकसान हो रहा है. समाज बदला है पर इतना भी नहीं कि लड़की को डंडे मारना छोड़ दे. मैं इसे नैतिकता से नहीं जोड़ती. नैतिकता के मानदंड समय के साथ बदलते हैं पर इसे यदि लड़कियों के नज़रिये से देखूं तो उन्हें ठगा जाता है और लड़के छोड़कर चले जाते हैं. वे सेटल हो जाते हैं दहेज के साथ, पर लड़कियों पर बुरी बीतती है. और उन्हें उनका परिवार ही नहीं स्वीकारता पर लड़के का परिवार लड़के को स्वीकारता है. मैं लड़कियों की सुरक्षा व भविष्य के बारे में सोचती हूं. लड़की ही क्यों बुरी? इस धारणा को

लघुकथाएं

आंखें

✍ योगेंद्र शर्मा

कभी उसके बड़े भाई की मौत से सारे कस्बे में हाहाकार मच गया था. जब उसकी अर्थी उठी तो कस्बे में कोई भी ऐसा न था, जिसकी आंख नम न हुई हो.

उसी कस्बे में आये भयंकर भूकंप से सारे मकान मलबे में बदल गये थे. मशीनों से दिन-रात मलबा उठाया जा रहा था. दबी, कुचली, बदशक्ल लगभग चालीस लाशें ज़मीन पर पड़ी थीं. कुछ को अस्पताल भी भेजा गया था. अस्पताल में कई मरीज़ ज़िंदगी और मौत की लड़ाई लड़ रहे थे.

इतनी लाशें देखकर लोग भौंचक्के थे, आंखें नम थी, लेकिन दर्द हद से गुज़र गया प्रतीत हो रहा था. आंखों का पानी जैसे सूख गया था. अजीब हैं ये आंखें एक मौत पर इतनी बरसीं, और चालीस की मौत पर सूख गयीं.

✍ ३/२९ सी, लक्ष्मी बाई मार्ग, रामघाट रोड, अलीगढ़ (उ. प्र.)
मो. : ९८९७४१०३२०

बदलना चाहिए.

◈प्रौढ़ावस्था में प्रवेश करनेवाले पति-पत्नी इस रिलेशनशिप की ओर ज़्यादा अग्रसर होते हैं. आपको क्या लगता है?

अहमदाबाद में ऐसा सम्मेलन हुआ था, जहां बच्चे अपने माता-पिता को लेकर आते हैं. बच्चे सेटल हैं, उनके पास समय नहीं है. आज हमारे यहां औसत आयु बढ़ी है. पैसा है (शहरों की बात) समय भी है, पर शेयरिंग करनेवाला कोई नहीं है. इसलिए बच्चे ही अपने अकेले पिता या अकेली माता को सैटल होने के लिए प्रेरित करते हैं. युवा अगर लिव–इन में रहना चाहते हैं तो क्या बुरा मगर इसमें लड़कियों के नज़रिए से ज़रूर सोचा जाना चाहिए.

◈किसी घटना ने कभी आपको हताशा की स्थिति में लाकर खड़ा किया?

कई बार, तीन-चार घटनाएं हमेशा 'हॉन्ट' करती हैं. १५ साल की उम्र में पिता की मृत्यु हो गयी थी. उस समय गांव में रहती थी और नहीं पता था कि आगे क्या करना है. ख़ैर बड़े भाई के पास दिल्ली आ गयी. जल्दी से जल्दी अपने पैरों पर खड़ी होना चाहती थी क्योंकि किसी से कुछ मांगना न तब, न आज, कभी अच्छा नहीं लगा. ... एक लड़का मुझे पसंद था. यह रिश्ता एक तरह से घर के सब लोगों की रजामंदी से ही था. सभी को पता था उसने किसी और से शादी कर ली. अब सोचती हूं कि यदि वह होता तो आज के वर्तमान पति न मिलते, जिन्होंने मुझे सारी सुविधाएं दीं. ख़ासतौर से मेरी क्रिएटिविटी को आगे बढ़ाया. हमेशा आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया.

उन दिनों मैं दिल्ली में थी. गांव में एक आदमी किसी को भगाकर लाया था. लड़की की मां रोते–रोते मेरे भाई के पास आयी और मेरे भाई ने रॉबिनहुड की तरह उसे पीटा. गुंडे ने दुश्मनी का बदला लिया और अख़बार में ख़बर छपी कि शमा (क्षमा) नाम की लड़की स्मगलिंग में पकड़ी गयी है. वह लोकल पेपर में क्षमा के नाम से छपवाया. लोकल अख़बारों के बहुत से ज़र्नलिस्ट ब्लैकमेलर्स की तरह पीछा करने लगे. किसी ने सच जानने की कभी कोशिश नहीं की. हां, मेरे पीछे मेरा परिवार शक्ति के रूप में हमेशा खड़ा रहा. एक लड़की की सज़ा दूसरी लड़की ने सही. लेकिन इस तरह की हताशाओं ने शक्ति भी बहुत दी.

वे लोग माफ़ी मांगने आये पर उस बात से जो

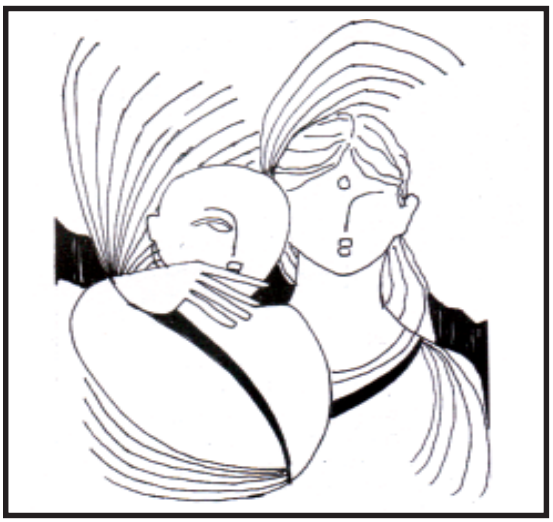

तक़लीफ़ हुई, मैं ही जानती हूं. यह पता चलता है कि लड़कियों को बदनाम करना कितना आसान था, पर आज स्थिति जुदा है.

◈देश में प्रचलित आरक्षण प्रथा के विषय में आप क्या सोचती हैं?

सबका एक तर्क होता है, वह ख़राब होता है. सब एक जैसे होते हैं जैसे कि मैं शर्मा हूं, इसलिए दलित विरोधी होऊंगी ही, जातिवादी विमर्श के उभार ने इंसानियत की मामूली सी स्पेस को ख़त्म कर दिया है. सवर्णों, दलितों/ओबीसी, अल्पसंख्यकों को एक दूसरे के खिलाफ़ खड़ा कर दिया है. यह उचित नहीं है. तमाम विमर्शों के नाम पर जो विखंडन है, वह ठीक नहीं है. हर जाति में लोग ग़रीब, साधनहीन और सताए हुए हैं इसकी शिनाख़्त ज़रूर होनी चाहिए.

◈अपनी ओर से पाठकों को कोई संदेश?

संदेश कोई मानता है? मैं लड़कियों से यही कहना चाहूंगी कि वे अत्याचार न सहें. इसका मतलब यह नहीं है कि औरों के साथ अत्याचार करें. वे क़ानूनों का दुरुपयोग किसी का हथियार बनकर न करें. किसी को भी फंसाने के लिए क़ानून का सहारा न लें. किसी को बचाने व न्याय दिलाने के लिए क़ानून का उपयोग करें.

मधु अरोड़ा

✍ एच-१/१०१, रिद्धि गार्डन्स,
फिल्म-सिटी रोड, मालाड (पूर्व), मुंबई-४०००९७.
मो. : ९८३३९५९२१६.

'नील घन में दमकती दामिनी' - महादेवी

✍ डॉ. राजम पिल्लै

'आग हूं जिससे ढुलकते बिंदु हिमजल के,
शून्य हूं जिसको बिछे हैं पांवड़े पल के,
पुलक हूं वह जो पला है कठिन प्रस्तर में,
हूं वही प्रतिबिंब जो आधार के उर में,
नील घन भी हूं, सुनहली दामिनी भी हूं.'

क्या किसी एक व्यक्ति में इस प्रकार से नितांत विरोधी-से लगते दो गुण हो सकते हैं?

'...स्त्री, पुरुष के वैभव की प्रदर्शनी मात्र समझी जाती है... बालक के न रहने पर जैसे उसके खिलौने निर्दिष्ट स्थानों से उठाकर फेंक दिये जाते हैं, उसी प्रकार, एक पुरुष के न होने पर न स्त्री के जीवन का कोई उपयोग ही रह जाता है, न समाज या गृह में उसको कोई निश्चित स्थान ही मिल सकता है. जब जला सकते थे तब इच्छा या अनिच्छा से उसे जीवित ही भस्म करके स्वर्ग में पति के विनोदार्थ भेज देते थे; परंतु अब उसे मृत पति का ऐसा निर्जीव स्मारक बन कर जीना पड़ता है, जिसके सम्मुख श्रद्धा से नतमस्तक होना तो दूर रहा, कोई उसे मलिन करने की इच्छा भी रोकना नहीं चाहता.'

क्या ये मर्मभेदी, वज्र-कठोर यथार्थ को रेखांकित करने वाले शब्द उसी लेखनी द्वारा अंकित हुए हैं जिसने मनुहार, समर्पण, आस्था के कुसुम-कोमल भावों को साकार कर कहा था :

'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल,
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर.
सौरभ फैला विपुल धूप बन,
मृदुल मोम-सा घुल रे मृदु तन;
दे प्रकाश का सिंधु अपरिमित
तेरे जीवन का अणु गल गल!
पुलक पुलक मेरे दीपक जल!'

महादेवी वर्मा ही वह अनूठी पात्र हैं जो 'नील घन में दामिनी-सी' दमकती भी हैं, भारतीय स्त्री की पराधीनता-परवशता की शृंखला की कड़ियों को झकझोरती भी हैं और अपने तन-मन को मोम-सा पिघलाकर प्रियतम के पथ को आलोकित कर, उसकी अनंत प्रतीक्षा भी करती हैं.

'सव्यसाची' रचनाकार :

बायें हाथ से भी शर-संचालन कर सकनेवाले अति-कुशल धनुर्धारी को 'सव्यसाची' कहते हैं इसीलिए कौंतेय अर्जुन की वह एक उपाधि भी थी. दो-दो विधाओं में, दो-दो कलाओं में लगभग समान रूप से सिद्धहस्त व्यक्ति को 'सव्यसाची' कहा जाता है. क्या महादेवी को 'सव्यसाची' रचनाकार नहीं कहा जा सकता?

हिंदी साहित्य के कई स्वनामधन्य इतिहासकारों ने तो 'छायावाद' के प्रमुख स्तंभों के रूप में सुमित्रानंदन पंत, जयशंकर प्रसाद और सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' को ही मान्यता दी है और अंत में जैसे बेमन से महादेवी वर्मा को भी उसमें सम्मिलित किया है. उन्होंने केवल यह बताना ज़रूरी समझा है कि 'छायावादी-काव्य-आंदोलन' में (हालांकि 'छायावाद' और 'आंदोलन' इन दोनों ही नामकरणों को अमान्य करनेवालों की तादाद भी कम नहीं है और उनकी

दलीलें भी बहुत कमज़ोर नहीं हैं!) महादेवी वर्मा का प्रवेश देर से हुआ है, वे कनिष्ठतम हैं; उनकी कविताओं में निस्संग आत्मनिष्ठा और अज्ञात प्रियतम के प्रति समर्पण-भाव का 'रहस्यवादी दर्शन' है; बौद्ध धर्म का दुखवाद है; मध्ययुगीन भक्त-कवि मीराबाई के साथ संभवत: कुछ-कुछ अर्थों में उनकी तुलना की जा सकती है... आदि-आदि. संदेह होता है कि कहीं यह संपूर्ण हिंदी साहित्य की सर्वाधिक तेजस्वी, प्रखर, सशक्त महिला रचनाकार होने की वजह से महादेवी के प्रति उत्पन्न पूर्वाग्रह पूर्ण पुरुष-दृष्टि का परिणाम तो नहीं है? महादेवी को 'सव्यसाची' कहना तो दूर रहा, उनकी पूरी रचना-संपदा का मूल्यांकन करना भी दूर, उन्हें तो ऐसी मूलहीन अमरबेल बना दिया गया है कि उनको 'पूज्य', 'महीयसी' कहना उन्हें मंज़ूर है, प्रशंसनीय जुझारू वीरांगना नहीं.

डॉ. एजाज़ पिल्लै

महादेवी की गद्य-रचनाएं अंधेरे में क्यों ?:

महादेवी वर्मा के गद्य-लेखन को लगभग हाशिये पर डाल दिया जाता है — आज लगभग तीन-चौथाई सदी बीत जाने के बाद भी, विश्वविद्यालयों में शोध प्रबंधों और परिसंवादों में 'गवेषणापूर्ण', 'विश्लेषणात्मक आलेखों' की लहलहाती फ़सलों के बावजूद भी महादेवी के कवि-पक्ष पर 'नूतन प्रकाश' डालना सभी के लिए ज़्यादा सुविधाजनक है. गद्यकार महादेवी का स्वरूप तेजपुंज का-सा है जिसके साथ सौम्य खिलवाड़ नहीं कर सकते हैं. शायद, इसीलिए कहीं किसी पाठ्यपुस्तक में कोई व्यक्ति-चित्र, कोई संस्मरण कभी-कभार देखने में भले आ जाये लेकिन उसे उनके रचनाधर्मी व्यक्तित्व के अभिन्न और अधिक सशक्त हिस्से के रूप में नहीं दिखाया जाता, क्यों? क्या इसलिए कि महादेवी ने समाज के दबे-कुचले, निरीह व्यक्तियों के बारे में विशेषकर पराश्रित स्त्रियों को केंद्र में रखकर जो और जैसा चित्रांकन किया है, वह आज भी हिंदी साहित्य में अतुलनीय है!

महादेवी ने देश के स्वाधीनता-आंदोलन में सक्रिय भाग नहीं लिया लेकिन मानव-मात्र की अस्मिता और स्वाधीनता की रक्षा के लिए उन्होंने लेखनी को हथियार बनाया. वे 'प्रगतिशील/प्रगतिवादी आंदोलन' के मोर्चों पर भी तैनात नहीं थीं लेकिन अपनी सोच, समीक्षा-दृष्टि और युग-बोध में वे अनेक प्रकाश-वर्ष आगे थीं और हैं.

महादेवी के महत्वपूर्ण गद्य-ग्रंथ :

१) अतीत के चलचित्र, २) स्मृति की रेखाएं, ३) मेरा परिवार, ४) पथ के साथी, ५) क्षणदा, ६) साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, ७) शृंखला की कड़ियां.

महादेवी के काव्य-ग्रंथ :

१) नीहार (१९३०), २) रश्मि (१९३२), ३) नीरजा (१९३४), ४) सांध्य गीत (१९३६), ५) दीपशिखा (१९४२).

कुछ परेशान करते सवाल :

सबसे पहले और सबसे ज़्यादा परेशान करती है महादेवी की प्रोजेक्टेड छबि, उनकी फ़ोटो, उनकी तस्वीर! महादेवी ने बचपन के 'तोतले उपक्रमों' के बाद सन १९३० में 'नीहार' के साथ अपनी विशिष्ट कवि-छबि बनायी. तबसे लेकर अभी इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक तक में, उनके ग्रंथ छपते आ रहे हैं, 'संस्मरण-ग्रंथ' प्रकाशित हो रहे हैं, रचनावलियां सुप्रतिष्ठापित प्रकाशन-संस्थाओं द्वारा सुप्रतिष्ठ विद्वानों-विदूषियों के संपादकत्व में लोकार्पित हो रही हैं पर सब जगह — मुखपृष्ठ पर और अंदर भी महादेवी की एक ही छबि है — प्रौढ़-वृद्धा महिला, काले फ्रेम का सादा-सा चश्मा, उसके पीछे से मिचमिचाती आंखें और सबसे ज़्यादा सुन्न कर देने वाला उनका पहरावा — मामूली कोरवाली सफ़ेद साड़ी, सर पर सावधानीपूर्वक रखा हुआ पल्ला. अगर नीचे नाम न लिखा जाये तो यों लगेगा जैसे किसी बालसुधार गृह या 'सेवासदन' या 'बापनुं घर' की द्वितीय श्रेणी की महिला-कर्मचारी या समाज-सेविका है. क्या महादेवी कभी किशोरी-नवयुवती रही ही नहीं? कोई अगर यह दलील दे कि उस ज़माने में सार्वजनिक जीवन में भाग लेने वाली कुलीन महिलाएं ऐसी ही वेश-भूषा धारण करती थीं तो वह अर्धसत्य है क्योंकि महादेवी के ही 'जवाहर भाई' नामक संस्मरण से पता चलता है कि वे इलाहाबाद में जवाहरलाल नेहरू की छोटी बहन कृष्णा (हथीसिंह) की सहपाठिनी थीं, 'आनंद-भवन' में उनको नेहरू-परिवार का स्नेह प्राप्त था और 'नेहरू-परिवार' की किसी भी महिला का पहरावा महादेवी का-सा नहीं था. उसी युग में सरोजिनी नायडू भी थीं, अरुणा आसफ़अली भी थीं — वे सब तो महादेवी की-सी व्यक्तिगत और

सामाजिक छबि की छाप नहीं छोड़तीं?

इस सत्य से मुकरना बेईमानी होगा कि महादेवी ने सायास, वह वेश-भूषा धारण की थी जिससे उनकी सामाजिक-वर्गीय विशिष्टता छिपी रहती थी. संन्यासी के गैरिक वसन की तरह, जो राजपुत्र और कंगाल-पुत्र को एक-सा कर देता है: भेद को कम से कम बाहर से तो मिटा ही देता है.

महादेवी ने गैरिक तो नहीं पर श्वेत और वह भी आडंबर पूर्ण नहीं, वरन किसी उत्तर भारतीय मध्यवर्गीय, न्यूनतम अक्षर ज्ञानवाली स्त्री की तरह सीधा पल्ला डालकर साड़ी पहनी और यही उनका आजीवन परिधान रहा. प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्य-कुलपति थीं तब भी, भारत सरकार का 'पद्मभूषण' और 'पद्मविभूषण' अलंकरण मिला तब भी, उत्तर प्रदेश की विधान परिषद की सदस्य मनोनीत होने पर भी!

ऐसा क्या हुआ उनके जीवन में कि फिर किशोरी-सुलभ, नवयुवती-सुलभ सब कुछ विलुप्त हो गया? 'नदी का मूल और साधु का कुल' जानने की कोशिश नहीं करनी चाहिए ऐसी लोकमान्यता है; क्या इसीलिए इक्के-दुक्के शोध-छात्रों को छोड़ दिया जाये तो लगभग सभी समकालीन और उत्तरकालीन समीक्षकों ने महादेवी वर्मा के व्यक्तित्व को रेखांकित करते हुए उनके जन्म-स्थान, परिवार आदि का, सरकारी रज़िस्टर में दर्ज़ करने की तरह उल्लेख कर दिया है और उसके बाद सीधे 'श्वेत-वसना', 'महीयसी', 'महादेवी' का प्रभावलयित, 'दीप-शिखा-सी' आलोकित प्रतिमा को मंचासीन किया है. दीपशिखा को प्रणाम करने की श्रद्धालु-मुद्रा सभी ने धारण की है लेकिन उस मिट्टी के पात्र की ओर कोई इंगित नहीं करता जो कुम्हार के आंवे में जलकर, तपकर इस स्थिति में पहुंचा कि अपनी 'लघु-सीमा' में भी सूर्य का, प्रकाश का प्रतिनिधि बन सके!

महादेवी का बचपन : प्रारंभ

महादेवी का जन्म उत्तर प्रदेश के फ़र्रूख़ाबाद जिले के एक सुप्रतिष्ठित परिवार में सन १९०७ को हुआ; उस दिन रंग और उल्लास का त्यौहार होली थी. पिता गोविंद प्रसाद वर्मा, एम. ए., एल. एल. बी. तक शिक्षा प्राप्त थे और इंदौर के डेली कॉलेज़ में प्राध्यापक थे. माता हेमरानी देवी विदुषी, कला-प्रिय तथा धर्म परायण महिला थीं. नाना ब्रजभाषा के कवि तथा भक्त-प्रवृत्ति के थे.

सन १९१२ में इंदौर के मिशन स्कूल में महादेवी की शिक्षा शुरू हुई. साथ-साथ घर में संस्कृत, उर्दू, चित्रकला, संगीत की पढ़ाई भी होती थी. कैसा द्वंद्वहीन, सीधा मार्ग था. तन और मन को अधिक से अधिक संपन्न और समृद्ध बनाने के कितने-कितने उपकरण थे. बीसवीं सदी के प्रथम चरण का उत्तर भारत, मध्य-वर्गीय सुशिक्षित परिवार और एक कन्या के व्यक्तित्व को बढ़ने-गढ़ने के लिए इतने सारे साधन-उपकरण! किसी को भी ईर्ष्या हो सकती थी बालिका महादवी के सहज सौभाग्य पर!

बचपन का सुन्न कर देनेवाला अंत! :

सन १९१६ महादेवी की उम्र केवल ९ साल! माता-पिता परिवार सब विद्या-ज्ञान-संपदा से संपन्न! पर घर के बुज़ुर्ग कर्ता ने प्राचीन परंपरा का पालन करने में कन्या और अभिभावकों का कल्याण माना. पारंपरिक विधान के अनुसार 'कन्या-दान' जितना शीघ्र किया जाये, उतना पिता, पातक से बचता है और यदि 'गौरी' कन्या (७ से ८-९ के बीच) को विवाह में दान किया जाये तो बहुत श्रेष्ठ पुण्य प्राप्त होता है.

महादेवी का ९ वर्ष की उम्र में स्वरूप नारायण वर्मा के साथ विवाह कर दिया गया. महादेवी की प्रतिक्रिया क्या रही होगी? नौ वर्ष की उम्र याने आज चौथी-पांचवीं क्लास में पढ़नेवाली बच्ची!

किशोरी-युवती-प्रौढ़ा महादेवी :

महादेवी ने 'भाभी' नामक एक संस्मरण-लेख में वर्षों बाद दर्ज़ किया, '.. उस दिन के बाद से बालिका प्रौढ़ हो गयी थी और युवती वृद्धा!' यह एक 'बाल-विधवा' के साथ बचपन के आस-पास हुई महादेवी की मित्रता का समापन अंक है! उस लेख में तो कम-से-कम दो व्यक्तियों पर ये अलग-अलग प्रतिक्रियाएं हुई थीं पर क्या 'बाल-विवाह' के बंधन में जकड़ी गयी बालिका महादेवी ने जीवन के कई सोपान एक साथ नहीं लांघ लिये होंगे!

महादेवी के जीवन के इस पहलू पर बहुत कम समीक्षकों ने चर्चा की है. गणपति चंद्र गुप्त ने अपने समीक्षा-ग्रंथ 'महादेवी : नया मूल्यांकन' में बताया है :

'यद्यपि महादेवी का विवाह बाल्यकाल में ही हो गया था किंतु उसे उन्होंने कभी भी स्वीकार नहीं किया. विवाह के उपरांत वे एक बार ससुराल गयीं किंतु वहां रो-रोकर अस्वस्थ हो गयीं. जिससे उन्हें दूसरे ही दिन वापस पितृ-गृह भेज दिया गया. उसके बाद वे तथा इनके पति दोनों ही अलग-

अलग स्थानों पर शिक्षा प्राप्त करते रहे तथा पारस्परिक संपर्क से बचे रहे. बी. ए. उत्तीर्ण करते ही जब इनके गौने का प्रश्न उपस्थित हुआ तो इन्होंने पूरी दृढ़ता से वैवाहिक जीवन एवं गार्हस्थ्य में प्रवेश करना अस्वीकार कर दिया. वैसे, यह निर्णय वे बहुत पहले ले चुकी थीं, पर इसकी स्पष्ट घोषणा इसी समय की गयी.'

इसी प्रसंग को, गणपति चंद्र गुप्त ने 'महादेवी : विचार और व्यक्तित्व' (शिवचंद) में उद्धृत महादेवी के अपने शब्दों में दर्ज़ किया है —

'विवाह हो गया होगा पर मैं नहीं जानती. मन तो पत्नीत्व रूप में नहीं झुका... घर पर सब ने कहा पर मैंने तो भिक्षुणी होने की बात सोच ली थी. डॉक्टर साहब (पति) यहां आये. उनसे मैंने यही कह दिया कि आप से मेरा विवाह हुआ होगा पर मैं नहीं जानती और न ही मानती हूं कि मेरा विवाह हुआ है जबकि मन नहीं मानता. डॉक्टर साहब भी बोले, अच्छा भाई भिक्षुणी न होओ, भिक्षुणी होकर मांगती फिरोगी, यह अच्छा न लगेगा. जैसा तुम्हारा मन करे वैसे रहो.'

(महादेवी नया मूल्यांकन - पृ. १८१)

शृंखला की कड़ियों पर प्रहार :

यह है महादेवी वर्मा के जीवन का वह पक्ष जो जान-बूझकर मोटे मखमली पर्दों की ओट में दशकों तक छिपाया जाता रहा और अधुनातन 'स्वप्नावलियों' में से भी विलुप्त है!

'शृंखला की कड़ियां' महादेवी का वह ग्रंथ है जिसे यदि सही वक़्त पर, सही तरीक़े से प्रस्तुत किया जाता तो उसका स्थान लगभग वह हो सकता था जो अंतर्राष्ट्रीय स्त्रीवादी विमर्श/आंदोलन में फ्रेंच समाजशास्त्री-लेखिका 'सिमोन द बुवा' के 'द सेकंड सेक्स' को प्राप्त है.

'शृंखला की कड़ियां' का समर्पण-वाक्य है :

'जन्म से अभिशप्त, जीवन में संतप्त किंतु अक्षय वात्सल्य वरदानमयी भारतीय नारी को.'

महादेवी 'अपनी बात' में कहती हैं :

'विचार के क्षणों में मुझे गद्य लिखना ही अच्छा लगता रहा है, क्योंकि उसमें अपनी अनुभूति ही नहीं बाह्य परिस्थितियों के विश्लेषण के लिए भी पर्याप्त अवकाश रहता है.'

पाठकों-समीक्षकों को जैसे आगाह करते हुए वे कहती हैं :

'प्रस्तुत संग्रह में कुछ ऐसे निबंध जा रहे हैं जिनमें मैंने भारतीय नारी की विषम परिस्थितियों को अनेक दृष्टि बिंदुओं से देखने का प्रयास किया है. अन्याय के प्रति मैं स्वभाव से असहिष्णु हूं अत: इन निबंधों में उग्रता की गंध स्वाभाविक है, परंतु ध्वंस के लिए ध्वंस के सिद्धांत में मेरा कभी विश्वास नहीं रहा. मैं तो सृजन के उन प्रकाश-तत्त्वों के प्रति निष्ठावान हूं जिनकी उपस्थिति में विकृति अंधकार के समान विलीन हो जाती है... अंधकार स्वयं कुछ न होकर आलोक का अभाव है इसी से छोटे-से-छोटा दीपक भी उसकी सघनता नष्ट कर देने में समर्थ है.'

'शृंखला की कड़ियां' में महादेवी ने 'हमारी शृंखला की कड़ियां', 'युद्ध और नारी', 'नारीत्व का अभिशाप', 'आधुनिक नारी', 'घर और बाहर', 'हिंदू स्त्री का पत्नीत्व', 'जीवन का व्यवसाय', 'स्त्री के अर्थ स्वातंत्र्य का प्रश्न' जैसे शीर्षकों के अंतर्गत पारंपरिक नारी, आधुनिक नारी की परवशताओं, छटपटाहटों और गुमराह करती आकांक्षाओं पर चर्चा की है.

भारतीय नारी के वर्तमान और भविष्य को कितने स्पष्ट शब्दों में उन्होंने व्यक्त किया है :

'भारतीय नारी... जिस दिन अपने संपूर्ण प्राण प्रवेग से जाग सके उस दिन उसकी गति रोकना किसी के लिए संभव नहीं. उसके अधिकारों के संबंध में यह सत्य है कि वे भिक्षावृत्ति से न मिले हैं, न मिलेंगे, क्योंकि उनकी स्थिति आदान-प्रदान योग्य वस्तुओं से भिन्न है. समाज में व्यक्ति का सहयोग और विकास की दिशा में उसका उपयोग ही उसके अधिकार निश्चित करता रहता है और इस प्रकार, हमारे अधिकार, हमारी शक्ति और विवेक के सापेक्ष रहेंगे.'

('शृंखला की कड़ियां' : पृ. ९)

सन १९३५ में 'स्त्री के अर्थ-स्वातंत्र्य का प्रश्न' पर उन्होंने जो लेख लिखा वह 'शृंखला की कड़ियां' में संग्रहीत है. उनकी दृष्टि कितनी काल-भेदी थी उसका इसमें परिचय मिलता है, जब वे लिखती हैं :

'आज की बदली हुई परिस्थितियों में स्त्री केवल उन्हीं आदर्शों से संतोष न कर लेगी जिनके सारे रंग उसके आंसुओं से धुल चुके हैं, जिनकी सारी शीतलता उसके संताप से उष्ण हो चुकी है. समाज यदि स्वेच्छा से उसके अर्थसंबंधी वैषम्य की ओर ध्यान न दे, उसमें परिवर्तन या

संशोधन को आवश्यक न समझे तो स्त्री का विद्रोह दिशाहीन आंधी-जैसा वेग पकड़ता जायेगा और तब एक निरंतर ध्वंस के अतिरिक्त समाज उससे कुछ और न पा सकेगा. ऐसी स्थिति न स्त्री के लिए सुखकर है, न समाज के लिए सृजनात्मक.'

(वही - पृ. ९५)

महादेवी का जीवन-संदेश : 'न दैन्यं न च पलायनं'

महादेवी वर्मा ने नौकरी की; समाज के हाशिये पर पड़े लोगों को आत्मीय बनाया, 'पथ के साथी' मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत को बनाया तो उन सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' को भी, जिनसे संपर्क रखना बड़े-से-बड़े उदार, भद्र-पुरुषों के लिए भी कठिन था. महादेवी कभी पलायनवादी नहीं रहीं भले ही उन्होंने अपने मन के एक बहुत बड़े अंश को 'एकांतप्रिय' बना लिया था. इसीलिए लगता है कि एक ही महादेवी में दो-दो प्रबल व्यक्तित्व रहे और दोनों ही सत्य और सशक्त थे.

महादेवी ने लिखा :

'मैं नीर भरी दुख की बदली...
विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली.'

वहीं महादेवी ने यह भी लिखा :

'पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला!
... और होंगे चरण हारे,
और हैं जो लौटते, दे शूल को संकल्प सारे!'

महादेवी का कृत-संकल्प जीवन न केवल स्त्री-वर्ग के लिए वरन किसी भी लक्ष्य-गामी व्यक्ति के लिए दीप-स्तंभ है.

६०१, ए रामकुंज को.हॉ.सो., रा. के. वैद्य रोड, दादर (प.), मुंबई-४०००२८.
मो.: ९८२०२२९५६५.
ई-मेल : *ravindra.pillai@gmail.com*

लघुकथा

और दरवाज़ा बंद हो गया

डॉ. सुरेंद्र गुप्त

कोई चालीस वर्ष पुरानी बात है, हम कौली स्टेशन से अकड़ा गांव के लिए चले तो धूप चढ़ चुकी थी. स्टेशन से अकड़ा गांव का रास्ता कोई चार कि. मी. का रहा होगा. अभी थोड़ा ही चले थे कि पसीने ने अपना रंग दिखाना शुरू किया. और प्यास भी लगने लगी. साथ में पत्नी थी उसका तो और भी बुरा हाल था. ज्यों-ज्यों आगे बढ़ रहे थे, प्यास अपना रौद्र रूप धारण करती जा रही थी. रास्ते में एक गांव पड़ा, सोचा यहां किसी घर से पानी मांग कर पी लिया जाये. सो पत्नी ने आगे बढ़ कर एक घर का दरवाज़ा खटखटाया. भीतर से एक महिला ही बाहर आयी और जिज्ञासा भरी निग़ाह से हमारी ओर देखकर बोली – 'हां जी.'

मैंने तुरंत कहा – 'बहिन जी, प्यास लगी है, यदि पानी मिल जाता...!'

वह कुछ क्षण मुझे तथा पत्नी को घूरती रही. फिर एक तीर-सा सवाल हमारी तरफ़ छोड़ दिया – कौन जात हो?'

यह प्रश्न, अब क्या जवाब दें. पत्नी ही बोली – 'बनिये हैं, अग्रवाल.'

'बहिन, हम कराल जाति के हैं. नीच जाति के हैं, आपको पानी नहीं पिला सकते. इस गांव में सभी घर कराल जाति के लोगों के हैं.'

'लेकिन बहिन जी, हमें आपके किसी भी जाति के होने से कोई फ़र्क नहीं पड़ता. बस, आप पानी पिलाइए.'

'नहीं... भाई, हम आपका धर्म बिगाड़ना नहीं चाहते...'

'पर बहिन जी, यदि हम आपके घर से प्यासे चले जायेंगे तब आपका धर्म नहीं बिगड़ेगा. बहिन जी, पानी की कोई जाति नहीं होती. आप कृपा करके पानी पिलाइए.'

'नहीं भाई, हम पाप अपने सिर नहीं लेना चाहते.'

अभी, हम आश्चर्यचकित-से एक-दूसरे की तरफ़ देख ही रहे थे, और तभी भड़भड़ाहट की आवाज़ के साथ दरवाज़ा बंद हो गया.

आर.एन.-७, महेश नगर, अंबाला छावनी-१३३००१. मो.: ९४१६२५०२७९

एक नयी पहल - 'हमारी बिटिया'

✍ डॉ. सुलभा कोरे

'हमारी बिटिया' : संपादक, आचार्य ओम प्रकाश मिश्र 'कंचन'

प्रकाशक : पांचाल प्रकाशन, फ़र्रुखाबाद (उ. प्र.)

मू. १५० रु.

वर्ष २०११ की जनगणना के अनुसार भारत में १००० पुरुषों की तुलना में ९४० महिलाओं की संख्या दर्ज़ की गयी है. इससे पूर्व तो महिलाओं की संख्या इससे कम, अर्थात ९३० के आसपास ही घूम रही थी. हरयाणा में तो १००० पुरुषों की तुलना में सिर्फ़ ८७७ स्त्रियों की संख्या दर्ज़ की गयी है. पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की संख्या में आयी कमी, यह वर्तमान की ही नहीं बल्कि सदियों से चली आ रही समस्या है और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह प्रकृति निर्मित समस्या नहीं है बल्कि यह मानव निर्मित अर्थात हमारी ही निर्माण की हुई समस्या है. हमारे समाज की स्त्रियों की ओर देखने की जो दृष्टि है, उसी का परिणाम है, यह समस्या! यह समस्या यदि इसी तरह ज़ारी रहेगी या फिर स्त्रियों का यह अनुपात इसी तरह गिरता रहेगा, तब वह दिन दूर नहीं होगा जब अराजकता फैलेगी और समाज को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ेगा.

हमारे पुरुष प्रधान समाज की स्त्रियों की ओर देखने की दृष्टि में सदियों के बाद भी ख़ास परिवर्तन नहीं आया है. आज भी यह स्थिति कुछ अपवादों को छोड़ दिया जाये, तो वहीं है. अन्यथा आज भी लड़कियां जन्म से पूर्व मां की कोख़ में दम नहीं तोड़तीं, या फिर जन्मते ही उन्हें पानी में दम तोड़ने पर या गले में नाखून गड़ाकर मार नहीं दिया जाता. न ही दहेज या बलात्कार का मुक़ाबला न करने पर उन्हें आत्महत्या या हत्या का मुंह देखना पड़ता. हालांकि स्त्री की ओर देखने का यह नज़रिया स्त्री और पुरुष अर्थात समाज का है. यह समाज आधुनिक, शिक्षित है तथा गंवार, अनपढ़ भी है. परिणामस्वरूप गर्भ के रहते ही, उसका 'लिंग' जानने की उत्सुकता लोगों को कहां से कहां तक पहुंचा देती है, इसका अनुमान लगाना भी बहुत कठिन बात है. यदि गर्भ 'लड़के' का हो तो उस 'वंश के दीपक' के स्वागत हेतु पलक पांवडे बिछाये जाते हैं और गर्भ यदि 'लड़की' का हो तो उसे किस तरह से नष्ट किया जाये या गिराया जाये, इस बारे में योजनाएं बनायी जाती हैं और उन योजनाओं को अंजाम देने के लिए साम, दाम, दंड, भेद आदि सब कुछ प्रयोग किया जाता है और लड़की का सूरज उगने से पहले ही ढलता है.

यह स्थिति जितनी भयावह, डरावनी है, उससे कहीं ज़्यादा चिंताजनक है. इस गंभीर समस्या तथा लोगों की सीमित, सिकुड़ी हुई मानसिकता को उजागर कर, उसे बदलने हेतु अनेक योजनाएं चलायी जा रही हैं और आगे भी चलायी जायेंगी, क्योंकि लोगों की, समाज की मानसिकता इतनी आसानी से बदलना आसान और संभव नहीं है.

'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' इस अभियान के अंतर्गत आचार्य ओमप्रकाश मिश्र 'कंचन' द्वारा संपादित 'हमारी बिटिया' काव्य संकलन आपके सोचने, सहेजने और बदलने हेतु प्रेरित करने की दिशा में उठाया गया एक सकारात्मक और ठोस क़दम है. यह काव्य संकलन नारी सुरक्षा, शिक्षा और अस्मिता को रेखांकित करने के साथ-साथ अनेक कवियों की नारी के प्रति समर्पित भावनाओं को प्रदर्शित करता है.

इस काव्य संकलन की अनूठी शुरुआत फ़र्रुखाबाद की दो बेटियों अर्थात महान छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा तथा सुभद्रा कुमारी चौहान को समर्पित है.

इस काव्य संकलन में अनेक कवि, कवयित्रियों की 'स्त्री' से जुड़ी रचनाएं समाहित की गयी हैं. संकलन छोटा-सा है लेकिन उसमें स्त्री के प्रति विभिन्न कवियों की मानसिकता तथा समाज निर्माण में उसके योगदान को लेकर अनेक रंगों, छटाओं को समेटा गया है.

योगेशचंद्र तिवारी जी की 'मेरी बिटिया' कविता, बेटी को मां, बहन तथा पत्नी के रूप में बनते, सहजते देखती है जबकि डॉ. शिव ओम 'अंबर' की 'स्त्री-तीन

कविताएं' बेहतरीन तरीक़े से स्त्री की यात्रा और रूपों का वर्णन करती है. आचार्य ब्रज बिहारी मिश्र की कविता- 'आंचल के दूध से आंख के पानी तक' पहुंचाती है और आचार्य रामकृष्ण त्रिवेदी 'तुम न होती, कुछ न होता' कहते हुए दो क़दम आगे बढ़ जाती है. 'सिर्फ़ दावे नहीं, कुछ किया भी करो. नारी शिक्षा को घर-घर पहुंचाया करो ' यह कहते हुए नलिन श्रीवास्तव, वास्तविकता के धरातल पर उतरते हुए इस दिशा में कुछ सकारात्मक करने के लिए प्रेरित करते हैं. 'स्त्री-पुरुष का रिश्ता, आपसी सम्मान की मांग करता है,' कहते हुए डॉ. कृष्णकांत त्रिपाठी, इस दिशा में सही आवश्यकता का बखान करते हैं. 'गागर में सागर' भरनेवाला नारी अस्मिता का डॉ. रामकृष्ण राजपूत का छोटा-सा लेख, 'बेटियों की महिमा' बखान करते सर्वश्री राजेश हजेला, कन्हैयालाल पांडेय, दिनेश अवस्थी, ऋतुजा गुप्त, डॉ. रघुनंदन प्रसाद दीक्षित, तथा पारुल सिंह की रचनाएं, उस वास्तविकता को अपनी रचनाओं के जरिए अधिक गरिमामयी करती हैं, श्रीमती मधु गौड़ के लिए 'बेटी जीवन का उत्सव है' जबकि मेधावी वर्मा 'एक नारी के रूप में' बेटी को देखती हैं. सुश्री गरिमा पांडेय भी अपने नारीत्व को 'मैं एक सीमा रेखा हूं' के जरिए अभिव्यक्त करती हैं. नारी की महिमा और समाज में नारी की आवश्यकता को लेकर यहां अनेक कवियों ने अपनी प्रतिभा को संवारा है. सर्वश्री विजय प्रकाश मिश्र, डॉ. रुद्रनारायण त्रिपाठी, रवि शुक्ला, रवीश पाठक, डॉ. संतोष पांडेय, राजेश निराला, निमिष टंडन, जैसे कवियों ने 'नारी महिमा' का बखान किया है. उर्मिला देवी दीक्षित की 'फिर किसलिए तुम्हारा इमान डोलता है?' यह निर्मिति पुरुष मानसिकता को झकझोरने का काम करती है. सिर्फ़ स्त्री और स्त्री की महिमा को समर्पित यह काव्य संकलन, एक बहुत बड़े अभियान के तहत देखे गये बहुत विशाल सपने को अपने में समाहित कर चलता है. यह काव्य संकलन उस सपने को आपके सामने प्रस्तुत करता है. आचार्य डॉ. ओमप्रकाश मिश्र 'कंचन' ने अपने मेधावी गहन अध्ययन और स्त्री के प्रति समाज की मानसिकता में आयी कमी को बड़े तल्ख अंदाज़ से बयां किया है. यह संपूर्ण काव्य संकलन अर्थात नारी के प्रति समाज की मानसिकता में परिवर्तन लाने की एक ईमानदार कोशिश है.

स्वयं कंचन जी ने अपनी कविताओं के जरिए इस प्रयास को और गंभीर और गहन बनाया है. भ्रूण हत्या, नारी, मां, बिटिया जैसे अनेक रूपों में कंचन जी ने नारी को इस काव्य संकलन की कविताओं के जरिए उकेरा है. इन कविताओं की तासीर में अपील है, तंज है और दु:ख भी है. साथ ही, इन कविताओं में स्त्री की ओर देखने की समाज, लोगों की बदली हुई मानसिकता भी दिखायी देती है. यह अभियान है, दहेज और भ्रूणहत्या के खिलाफ़ बड़े तीखे ढंग से छेड़ा गया. यह आपको नज़रिया देता है, नज़ारा दिखाता है और आपका नज़रिया बदलने का काम भी करता है.

आचार्य ओमप्रकाश मिश्र 'कंचन' तथा उनके साथियों के इस प्रयास तथा उनकी सोच को, उनके प्रयासों को हमारा प्रणाम!

क्षेत्र महाप्रबंधक कार्यालय,
यूनियन बैंक, फोर्ट, मुंबई-४०००२३.
मो. : ९८२०४६८९१९

रिश्तों में बैठा दुखद आत्मसंवेदन : 'दस्तख़त'

✍ राधेलाल विजधावने

दस्तख़त (नयी हिंदी ग़ज़लें) **: ऋषिवंश**
प्रकाशक : नमन प्रकाशन, ४२३१/१, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली - ११०००२. **मूल्य :** २००/-

मनुष्य पैदाइश के साथ रिश्ते लेकर आता है. बिना रिश्तों के अकेलेपन के साथ जीना संभव नहीं. समाज में अच्छे-बुरे रिश्ते होते ही हैं, जिन्हें नकारा नहीं जा सकता.

'दस्तख़त' ऋषिवंश का ग़ज़ल संग्रह है जिसमें सामाजिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक रिश्तों की गहन पड़ताल है. जिसमें सुखद और दु:खद अनुभवों की विविध स्तरीय अनुभवगत अनुभूतियां हैं.

ऋषिवंश का आत्म संवेदन जीवन में अनुभवगत यथार्थ को संवेदनिक ढंग से स्पर्श करता है. अंधेरे की सुनसान राहों पर चलने वाले काफ़िलों अर्थात अंध विश्वासों की राहों पर चलने वाले लोगों के आत्मदर्द के बारे में संवेदनिक एहसास यह भी है कि —

'लो ज़िंदगी के शोगवार सिलसिले चले
सुनसान अंधेरों की राह काफ़िले चले.

वह रास्ता निकाल लिया दर्दमंद ने अब
कि लहूलुहान पांव जहां बे-छिले चले.'

'दस्तख़त' संग्रह की ऋषिवंश की ग़ज़लें वर्तमान ग़ज़ल लेखन की शिक्षण शैली से अलग हैं. 'प्राइमाफेसी' ये ग़ज़लें सामान्य शब्दार्थों में समायी हैं, लेकिन वास्तव में गहनता से देखा जाये तो लगता है ये संपूर्ण मानवीय एवं पूर्णत: जनपक्षीय ग़ज़लें हैं, जिनमें मनुष्यों के संपूर्ण कल्याण की तीव्र भावनाएं और संभावनाएं हैं —

'रोशनी बनकर निखरना था,
अंधेरा बनकर रहे हरदम,
दर्दवाली दास्तानें कुछ,
और कुछ बीमार से मौसम.
दोस्तों की मेहरबानी थी
वरना ऐसा कैसे हो जाता
लोग आते दिल को बहलाने,
और बढ़ता बेवजह मातम.'

आज मनुष्य मतलबी दुनिया में जी रहा है, इसलिए आंतरिक और बाह्यरूप से बस दुखद अहसास व्याप्त है. क्योंकि सामाजिक-सांस्कृतिक माहौल बिगड़ रहा है. उदारता, निरपेक्षता, निष्पक्षता अब मानवीय मन से अनुपस्थित हो चुकी हैं. इसी जीवन यथार्थ को इस संग्रह में ऋषिवंश ने अपनी अलग दृष्टि और व्यंजना के साथ प्रस्तुत किया है —

'दिल टूट गया सब कहते हैं
सनके बहके से रहते हैं,
हमको तो याद नहीं कुछ भी
चुपचाप असलियत सहते हैं.
बेकार मतलबी दुनिया में
क्यों पानी जैसे बहते हैं?'

ऋषिवंश की ग़ज़लें भ्रामक प्रतिबद्धताओं को तोड़ती हैं. ये ग़ज़लें मनुष्य के जीवन में चुपचाप आये अकेलेपन और उदासी में ढले सिलसिलों को तोड़ती हैं. इसलिए ये ग़ज़लें मानवीय जीवन की सृजनात्मक गतिविधियों को गति देती हैं. इसीलिए इनमें अनुभूतियों की विराटता है तथा जीवन के आचरणगत, परिवेशगत परिदृश्यों का दृश्यांकन भी है —

'हर तरफ़ उजड़ी हुई तस्वीर है
देखिए कब संवरती तकदीर है.
आदमी की ज़िंदगी है बस यही
जनम से मरने तलक बस पीर है.'

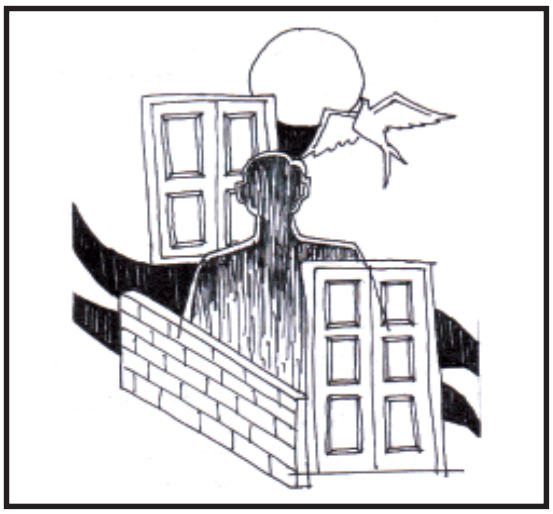

'दस्तख़त' संग्रह की ऋषिवंश की ग़ज़लें उपदेश वाक्यों की तरह नहीं लिखी गयी हैं, इनमें जीवन का निचोड़ा हुआ अनुभव है, जो व्यावहारिक यथार्थ की पृष्ठभूमि पर स्थित है. इसलिए इन, ग़ज़लों में मानवीय हितोपदेशी भावनाएं स्वत: स्फूर्त हैं.

ऋषिवंश का लेखन किसी विधा-विशेष से प्रतिबद्ध होकर भर नहीं रह गया है. ये गीत, ग़ज़ल, कहानी, कविता, उपन्यास, लेख, संस्मरण... आदि समान रूप से लिखते हैं. यह प्रतिभा हिंदी साहित्य में इनके रचनात्मक मूल्यों में इजाफ़ा करती है. साथ ही साथ व्याप्त जड़ता को तोड़ती है, ताकि मनुष्य आपस में आत्मीय रिश्तों को मज़बूती देने की निरंतर कोशिश करते रहें. इसलिए इन ग़ज़लों में संगठन की संपूर्ण आश्वस्तता तथा विश्वसनीयता स्पष्ट है —

'बहुत दिन से तुम्हारे पास आना चाहता हूं,
सितारों की तरह फिर झिलमिलाना चाहता हूं.
आजकल इस शहर के लोग बड़े जालिम है,
ऐन चौराहे फिर यह आजमाना चाहता हूं.'

ऋषिवंश की ग़ज़लें वर्तमान वक़्त के परिणामों के दृश्यबिंबों को प्रत्यक्ष करती हैं, इसलिए इनमें मानवीय जीवन के निरंतर प्रगाढ़ होते रिश्तों की ज़रूरी पहल है. ये ग़ज़लें समय-समाज के अंदरूनी दर्द और तकलीफ़ों के कारणों को तलाशती हैं तथा उनकी जड़ों पर केंद्रित करती हैं.

ई-८/७३, भरत नगर (शाहपुरा),
अरेरा कॉलोनी, भोपाल-४६२०३१
मो. : ९८२६५५९९८९

आर सी एफ
साथ बढ़ें समृद्धी की ओर
पृथ्वी का अधिक पोषण
भारत की अधिक समृद्धि
छटे दशक में अपनी शुरुवात से ही आरसीएफ भारत की कृषि उत्पादकता को बढ़ानेवाली एक प्रमुख शक्ति रही है। हमारी कामयाबी की जड़ें हमारे विश्वास में हैं, हमारा विश्वास है कि कृषक समुदाय की अधिकारिता ही सम्मलित विकास की ओर अग्रेसर करती है। लम्बे समय से हम भारतीय किसानों के सच्चे और विश्वसनीय हमसफर रहे हैं। निरंतर कृषि के माध्यम से निरंतर आत्मनिर्भरता आज राष्ट्र की जरुरत है और हम गुणवत्तापूर्ण कृषि इनपुट और प्रभावी कृषि सेवा किसानों को प्रदान करके मिट्टी की उचित देखरेख के साथ खेतों की उच्च उत्पादकता सुनिश्चित कर रहे हैं।
हमारे प्रेरणादायी निष्पादन :
देश के अग्रणीय उर्वरक निर्माता।
पिछले पाँच दशकों से भारतीय किसानों को समर्पित सेवाएँ।
उर्वरक क्षेत्र में पहली पाँच कंपनीयों में स्थान।
'उज्ज्वला' यूरिया, संयुक्त श्रेणी 'सुफला' (15:15:15 और 20:20:0) पानी में घुलनशील उर्वरक 'सुजला', जैविक उर्वरक 'बायोला' सूक्ष्म पोषक तत्वोंवाला 'माइक्रोला' जैसे कई उत्पाद।
रासायनिक क्षेत्र में अग्रणी, 20 औद्योगिक रसायनों का उत्पादन।
भविष्य की राह :
1.27 मिलियन टन प्रति वर्ष यूरिया बनाने के लिए विस्तारित परियोजना।
सीआइएल, गेल और एफसीआइएल के साथ मिलकर कोल गैसिफिकेशन के माध्यम से तालचर में उर्वरक संकुल स्थापित करना।
मध्य पूर्वी संसाधन समृद्ध देशों में यूरिया के लिए संयुक्त उद्यम नरियोजनाएँ स्थापित करना।
रॉक फास्फेट और पोटाश के लिए लम्बी अवधि का ऑफटेक करार करना।
निरंतर विकास पर सशक्त रुप से ध्यान केंद्रित करना।
राष्ट्रीय केमिकल्स एण्ड फर्टिलाइजर्स लिमिटेड
(भारत सरकार का उपक्रम)
"प्रियदर्शिनी", इस्टर्न एक्सप्रेस हाईवे, सायन, मुंबई - 400 022. | www.rcfltd.com

- Technology Driven
- Large Product Portfolio
- Customer Centric
- Friendliest Emulsions
- Innovative

ANUCRYL is a flagship brand from technology driven company **ANUVI**.

With a customer centric approach and large product portfolio, **ANUCRYL's** continuous innovation and efforts to maintain consistent quality & develop friendly emulsions benefits your paints and protects the ones who use them.

It is true, for every paint that you shall make from now on, it would keep your customers satisfied as much as it would please their eyes.

ANUCRYL®

A friend you can trust.

ANUVI CHEMICALS LIMITED

205, 210 & 211 Narmada, Laxmi Industrial Premises, Pokharan Road No.1, Vartak Nagar, Thane - 400 606. Maharashtra

Contact Us: 022 25855400/ 25855434/35 or Email: sales@anuvichem.com, Website: www.anuvi.in

आर. एन. आई. पंजीकरण संख्या :३५७६४/ ७९

संपर्क : ए-१०, बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई-४०० ०८८.

Bharat Petroleum
40 Years

BPCL introduces

SmartLine

Toll-free 1800 22 4344

Ek Call...Sab Solve

Bharatgas
MAK Lubricants
Speed

At Bharat Petroleum, customers and their convenience are the epicenter of all our business operations. That is why we always develop and deliver various products and services which make things simple for you.

With the same goal, we have now introduced SmartLine - a single window system to listen to all your queries, suggestions and feedback related to any of our offerings.

It will also function as a 24x7 Emergency Helpline to provide immediate assistance. This Toll-Free number is a direct connect between our customers and field teams. So connect with us anytime.

We are just a call away!

www.bharatpetroleum.in

मंजुश्री द्वारा संपादित व युनिटी प्रिंटिंग प्रेस, ९, रेतीवाला इंडस्ट्रीयल इस्टेट, भायखला, मुंबई – ४०० ०२७. में मुद्रित.
टाईप सेटर्स : वन अप प्रिंटर्स, १२ वां रास्ता, द्वारका कुंज, चेंबूर, मुंबई – ४०० ०७१. फोन : २५५१५५४१